● श्रीकृष्णाय नमः ●

वर्ष ५

भक्ति

संख्या १२

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

श्रीमद्भगवद्गीता

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
ब्र० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

भाद्रपद सम्वत् १९८८

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और इसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

विषय सूची।

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. वेदोपदेश		४७७
२. भगवद्भक्ति	[ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी	४७८
४. निठुराई 'कविता'	[ले० श्री मदनगोपाल जी 'सिंहल'	४८५
३. विजय	[ले० श्री आनन्दी प्रसाद जी मिश्र 'निर्द्वन्द्व	४८३
५. जीवन रहस्य	[ले० श्री लालचन्द जी डिप्टी सेक्रेटरी	४८६
६. सदा शिव 'कविता'	[ले० श्रीमती ब्रजकुमारी 'विदुषी'	४८७
७. धर्म का प्रत्यक्ष फल	[ले० स्वामी आत्मानन्द जी	४८७
८. उपालम्भ 'कविता'	[ले० श्रीयुत रमाशंकर मिश्र 'श्रीपती'	४९१
९. उपासना का उत्कर्ष, कर्म तथा ज्ञान की अपेक्षा से	[ले० श्री भक्त रत्न मथुराप्रसाद जी	४९१
१०. आह्वान 'कविता'	[ले० श्रीराम सेवक सिंह जी 'श्याम'	४९२
११. धर्म और उसका प्रचार	[ले० श्री पं० हरिवंश जी वैद्य	४९३
१२. क्यों नहीं 'कविता'	[ले० श्री मदनगोपाल जी 'सिंहल'	४९५
१३. रामायण में नाम महिमा	[ले० श्री तुलसी दास जी	४९५
१४. अवतार जीवन में साधक भाव और श्री रामकृष्ण	[ले० श्रीस्वामी मेघेश्वरानन्द जी	४९९
१५. गोरक्षा 'कविता'	[ले० श्री दामोदर सहाय सिंह जी बी० ए०, एल० टी० कविकिंकर	५०३
१६. भक्ति और ज्ञान	[ले० श्री भक्त रत्न मथुरा प्रसाद जी	५०५
१७. भजन		५०७

REG D. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	वेदोपनिषद्	,,	।)
४.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	।)
५.	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	।।।
६	भक्ति ज्ञान या... संग्रह	,,	=)॥
७.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,,	।)
८.	सत्य शब्द संग्रह	,,	।=)
९.	शब्दसंग्रह	,,	।)
१०.	सारसंग्रह	,,	=)
११.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	।=)
१२.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१३.	भगवदंक	,,	॥।)
१४.	गवांक	,,	१।)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

श्रीनिमाई-निताई

Gita Press, Gorakhpur

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ५ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, भाद्रपद पूर्णिमा सं० १९८८ | अङ्क १२

वेदोपदेश

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सहयोगं भजन्तु।
मे योगं प्रपद्ये क्षेमं च क्षेमं प्रपद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ १ ॥

हे परमेश्वर! दश इन्द्रिय, दश प्राण, मन, बुद्धि चित्त अहंकार, विद्या, स्वभाव, शरीर और बल यह उपासना योग को सदा सेवन करें और उस योग द्वारा रक्षा करो और रक्षास योग को प्राप्त करो अतः रात दिन नमस्कार करते हैं ॥१॥

भूयानरात्याः सख्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि।
विभूरिति त्वोपास्महे वयम् ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! आप शच्या के पति हैं, सर्व शक्तिमान् पापोंके नाश करने वाले, सब में व्यापक और सब सामर्थ्य वाले हैं। हम आपकी उपासना करते हैं ॥ २ ॥

नमस्ते अस्तु परयत पश्य मा पश्यत।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्रह्मणवर्चसेन ॥ ३ ॥

हे परमेश्वर ! आप अनुग्रह से सदा हमको देखिए आप को सदा नमस्कार करते हैं कि अन्नादि से, कीर्ति से, तेज से, और सम्पूर्ण विद्या से युक्त हम लोगों को कीजिए हम आप की सदा उपासना करते हैं ॥ ३ ॥

अम्भो अभो महः सहः इति त्वोपास्महे वयम् ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! आप शान्त स्वरूप, ज्ञान के देने वाले, सब के पूज्य, सब के सहन करने वाले हैं इस प्रकार का जान कर हम आप की उपासना करते हैं ॥ ४ ॥

अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महेवयम् ॥ ५ ॥

आप शान्त स्वरूप प्रकाश स्वरूप, आनन्द रूप, ऐश्वर्य से युक्त और सहन शिक्त वाले हैं। अतः हम आप की उपासना करते हैं ॥ ५ ॥

भगवद्भक्ति

[ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी]

यस्य नाम प्रसादेन संसारी गोष्पदायते।
प्रकाशते परंब्रह्म तद्रामपदमाश्रये ॥

नाम निष्ठा।

मंसाराम- हे भगवन् ! भगवन्नाम के जप से पाप इस प्रकार भाग जाते हैं, जिस प्रकार सिंह के भय से मृग भागजाते हैं, ऐसा मैंने शास्त्रों में पढा है, आज इसी नाम की महिमा कृपा कर के सुनाइये और नाम निष्ठा के भक्तों की कथायें भी वर्णन कीजिये।

मस्तराम- हे मंसाराम ! यद्यपि भगवन्नाम की महिमा सब वेद पुराणों में वर्णन की गयी हैं परंतु नाम की महिमा का पार नहीं है। जैसे भगवत् की महिमा और भगवत् के चरित्र अनन्त हैं, इसी प्रकार नाम की महिमा अनन्त है और भगवत् के नाम भी अनन्त हैं, शेष जी नाम का नित्य प्रति वर्णन करते हैं, परंतु पार नहीं पाते, शिवजी का प्राणाधार नाम है। संसार से उद्धार के निमित्त भगवन्नाम ही पर्याप्त है, अन्य साधन का प्रयोजन ही नहीं है और विशेषता यह है कि किसी भाव से नाम स्मरण किया जाय निस्संदेह भगवत् की

प्राप्ति होती है। स्कंद पुराण में लिखा है 'कि भक्ति से अथवा अभक्ति से भगवन्नाम का उच्चारण सब पापों का इस प्रकार नाश करता है जिस प्रकार महा प्रलय की अग्नि सारे संसार को भस्म कर देती है। भागवत् में कहा है कि जैसे औषध जान कर या बिना जाने सेवन करने से अपना गुण करती है, इसी प्रकार भगवन्नाम जान में या अजान में जपने से पापों का नाश करता है'। नृसिंह पुराण में भगवत् का वचन है 'कि जो लोग मेरे नाम का जप करते हैं वे अपने करोड़ों पुरुषों सहित मेरे धाम को प्राप्त होते हैं'। विष्णु रहस्य में लिखा है 'कि वह ही परम ज्ञान वाला है और वह ही परम तप वाला है, जो भगवत् का नाम लेता है'। राम रक्षा में विश्वामित्र जी का वचन है, 'कि जो लोग राम राम, अथवा रामचंद्र रामचंद्र स्मरण करते हैं, इनको कभी पाप स्पर्श नहीं करता और दोनों लोकों की कामनायें सिद्ध होती हैं'। स्कन्द पुराण का वचन है कि राजसूययज्ञ, अश्वमेध, और अध्यात्म ज्ञान आदि का सारांश श्री कृष्ण स्वामी ने अपने नाम में रख दिया है अर्थात् सब का फल भगवत् नाम से प्राप्त होजाता है।

मंसाराम- महाराज! जिस मनुष्य का नाम लेकर पुकारते हैं, वह मनुष्य नाम सुनते ही तुरन्त आजाता है और ईश्वर का नाम हजारों मनुष्य लेते हैं परंतु ईश्वर नहीं आता, इस का क्या कारण है!

मस्तराम- भाई! जिस मनुष्य को कोई पुकारता है, उसके पहिचानने में किसी प्रकार की बेविश्वासी नहीं होती किंतु पूर्ण विश्वास होता है, इसी प्रकार नाम और नामी में यदि दृढ विश्वास हो तो निस्संदेह तुरन्त भगवत् का साक्षात्कार होजाय इस विषय में एक दृष्टान्त है कि धर्मात्मा न्याय कर्ता राजा की सभा में हजारों मनुष्य न्याय कराने को जाते हैं उन में बहुत से ऐसे होते हैं कि न तो न्याय कराने की रीति जानते हैं, न राज सभा में जाने की रीति जानते हैं, न राजा का स्वभाव पहिचानते हैं और न उनका कोई पक्ष पाती सिफारशी होता है, केवल दुहाई तिहाई करते हैं और शोर गुल मचाते हैं। ऐसे मनुष्य यद्यपि राजा के के धर्म, शील, स्वभाव और न्याय से अपने न्याय को प्राप्त होते हैं परंतु विलम्ब होता है। इस विलम्ब का कारण उनका अज्ञान है, राजा का उस में कुछ भी दोष नहीं है। कितने लोग ऐसे हैं कि राजसभा की रीति व्यवहार जानते हैं, राज सेवकों को पहिचानते हैं। ऐसे लोग जब सभा में जाते हैं, उसी समय अपने परिश्रम और राज सेवकों की कृपा से अपना अर्थ सिद्ध कर लेते हैं। ऐसे लोग बहुत थोड़े हैं कि केवल राजा की प्रसन्नता हेतु राजसभा में जाते हैं। ऐसे लोगों का अर्थ राजा आप सिद्ध करदेता है, उनको विनय और प्रार्थना का प्रयोजन नहीं है, इसी प्रकार नाम भी जापक के विश्वास के अनुसार अर्थ को सिद्ध कर देता है, यद्यपि तलवार में यह सामर्थ्य है कि लोहे के तवे के दो टुकड़े करदे परन्तु निर्बल के हाथ से लोहे के तवे में चिन्ह भी नहीं होता और बली के हाथ से तुरन्त दो टुकड़े होजाते हैं, यह ही वृत्तांत नाम के विश्वासका है।

मंसाराम- महाराज! बिना मन लगाये नाम लेने से भगवत् कैसे मिल जांयगे!

मस्तराम- भाई! किसी प्रकार नाम लिया

जाय, भगवत् प्राप्ति अवश्य होती है। क्योंकि नाम और नामी भिन्न नहीं हैं नियम है कि नाम पुकारने से नामी आ जाता है, तब भगवत् जो सर्वत्र हैं, नाम लेने से क्यों न आयंगे ? चाहे प्रेम से पुकारे, चाहे विना प्रेम पुकारे भगवत् अवश्य आवेंगे। अजामिल धोखे से भगवन्नाम लेकर परम धाम को गया। वाल्मीकि जी को भगवत् की महिमा का निर्मल ज्ञान नहीं था और न वे नाम की महिमा जानते थे। फिर भी नाम के प्रताप से उन्होंने परम सिद्धि प्राप्त की।

मंसाराम- महाराज ! कोई कोई हठ से कहते हैं, कि जब दृढ प्रीति होगी और चित्त की एकाग्रता विना भगवत् प्राप्ति नहीं हो सकी।

मस्तराम- भाई ! यह तेरा कथन ठीक है परन्तु प्रारंभ में ही प्रीति और चित्त की एकाग्रता किसी को नहीं होती और यदि होती है तो बहुत कम होती है परन्तु नाम ही विश्वास को और मन की लगन को अधिक करके भगवत् पद की प्राप्ति करा देता है। जैसे बालकपन की विद्या के अभ्यास में न तो प्रथम मन लगता है, न प्रीति है परन्तु उपाध्याय के भय से अक्षर घोखते २ बालक पण्डित हो जाता है, इसी प्रकार भगवन्नाम को रटना विश्वास और मन की लगन को बढ़ाकर भगवत् पद पर पहुंचा देती है।

आज कल बहुत लोग प्रकट भजन और नाम लेने को अच्छा नहीं कहते और दुराग्रह करते हैं कि विना मन लगे क्या होना है ? ऐसे लोग कभी अपने मनोरथ की सिद्धि को नहीं प्राप्त होते और न उनके संदेह निवृत्त होते हैं। ऐसे लोग निश्चय बावले कुत्ते के समान हैं कि भूंक २ कर मर जांयगें क्योंकि प्रथम तो शास्त्र की आज्ञा का अंगीकार न करना ही प्रबल अपराध है, जो उनके नाश का कारण है। भाव यह है कि शास्त्रों में तो यह आज्ञा हो चुकी है कि विना मन लगाये ऊपर ही से नाम लेने से उद्धार होता है और ये लोग शास्त्र विरुद्ध वर्णन करते हैं तो निश्चय असुर और अपराधी हुये और ऊपर के भजन से मन भी लगने लगता ही है। जिन असुर बुद्धियों को पहिले ही पद में रुचि न होगी, इनको दूसरा पद पाने की आशा ही क्या है। इसलिये वे जन्म मरण के चक्र में सर्वदा घूमते रहेंगे। बावले कुत्ते के दृष्टांत का यह अभिप्राय है कि पाप कर्मों के मद से उनकी बुद्धि भ्रष्ट होगयी है, सूक्ष्म अर्थ को समझना तो दूर रहा, मोटी बातें भी उनकी समझ में आना कठिन है। तात्पर्य यह है कि शीतल जल का स्नान अग्नि का सेवन, ऊपर की सुन्दरताई, दूसरे की बात, सुगन्ध, ठंडी पवन और दुर्गन्ध आदि तो बाहर से हृदय के भीतर चले जांय और भगवन्नाम ऐसा हुआ कि ऊपर से कहा हुआ गुण ही न करे! ऐसों की समझ और बुद्धि का क्या कहना है!

शोक इस बात का है कि प्रकट विख्यात बात पर भी दृष्टि नहीं होती कि पारस पत्थर से लोहा जान के लग जाय अथवा विना जाने, निश्चय सुवर्ण हो जाता है- अग्नि में कोई वस्तु जान कर डाली जाय या विना जाने डाली जाय, निश्चय भस्म हो जाती है, अमृत को कोई जान कर पिये अथवा विना जाने पिये, निश्चय अमर हो जाता है, इसी प्रकार भगवन्नाम को कोई मनुष्य विना जाने ऊपर से लेवे अथवा जान कर हृदय से लेवे,

निश्चय भगवद्रूप होजाता है। भाव यह है कि चारों फल के देने को और संसार सागर से उद्धार करने को भगवन्नाम समर्थ है, अन्य किसी साधन का प्रयोजन नहीं है, नाम से अच्छा अन्य कोई शरण अथवा अवलम्बन दिखाई नहीं देता। सत्य-युग में नाना प्रकार के कर्म, त्रेता में यज्ञ आदि द्वापर में भगवत् पूजन की व्यवस्था थी और पाप रूप कलियुग में तो सिवाय भगवन्नाम के कोई उपाय अच्छा और सुखसाध्य भगवत् और शास्त्रों ने नहीं माना है। भागवत् का वचन है कि जब महापापी धोखे से नाम लेकर संसार समुद्र से तर गये तो जान कर नाम लेने वालों का कहना ही क्या है। रामस्तवराज में लिखा है कि राम नाम ब्रह्म हत्या का दूर करने वाला है। भगवत् का वचन है कि कैसा ही किसी को दुःख हो और कोई कैसा ही विषयी और पापी हो, भगवन्नाम के प्रभाव से सब पापों और दुःखों से छूट कर परमानन्द को प्राप्त होता है, इस लिये दोनों लोकों का साधन भगवन्नाम से अधिक दूसरा नहीं है।

हे मंसाराम! यह बात प्रसिद्ध है कि जब किसी को कुछ कष्ट होता है अथवा कुछ कामना होती है, तो वर्ण बैठाते हैं और मनोरथ को प्राप्त होते हैं। जब ऐसा है तो भगवन्नाम का अभ्यास और जप सर्वदा करना अत्यन्त प्रयोजनीय है और अवश्य करणीय है। अत्यन्त से अत्यन्त आवश्यक यह है कि साढ़े तीन करोड़ शरीर पर रोम हैं, इस-लिये अपने जीवन भर में एक बार प्रति रोम एक नाम की गणना से साढे तीन करोड़ नाम पूरे कर देने चाहियें और इक्कीस हजार छः सौ श्वास दिन रात में चलते हैं, इतने ही नाम नित्य जप लेने चाहियें कि नाम बिना कोई श्वास खाली न जाय। इक्कीस हजार छः सौ नाम तीन सवा तीन घड़ी में पूरे होजाते हैं। यह भी प्रयोजन नहीं है कि एक स्थान पर बैठ कर नाम लिये जावें, चलते, फिरते, बात करते जिस प्रकार हो सके पूरे कर देने चाहियें।

हे मंसाराम! यह दोनों प्रकार का कर्तव्य उनके लिये बताया है, जिनको नाम लेने में प्रीति नहीं है और जिनको भगवन्नाम में प्रीति है अनुक्षण नाम रटते हैं, एक पल भी बिना नाम जाने नहीं देते, उनके लिये किसी प्रकार की रीति नहीं है क्योंकि उनका तो जीवन धन भगवन्नाम ही है, भगवन्नाम के सिवाय उनको कुछ इच्छा ही नहीं है।

एक भक्त अपने मन को इस प्रकार समझाता है—अरे मन! समझजा, थोड़ा चेत कर! तू भग-वदंश से हुआ है, सदा एक रस प्रकाशमान और ज्ञानानन्द स्वरूप है, कभी ऐसा नहीं हुआ कि तू न रहा हो, या आगे न होगा! न तुझे मृत्यु है, न तू कभी जन्मता है परन्तु श्री कृष्ण स्वामी के चरण कमलों से विमुख होकर तू इस गति को प्राप्त हुआ है कि भाँति भाँति के दुःख, नरक स्वर्ग, नाना प्रकार की पीड़ा, चौरासी लाख योनियाँ तेरे शिर मंढी गयी हैं, स्त्री, पुत्र, धन, गृह, मित्र, आदि को तू अपना और नित्य समझता है, इनकी चिंता और शोच में दुखी रहता है, अब तू इस स्वरूप का चिंतन किया कर कि जिस से माया जाल से तेरी छुट्टी हो जाय और परमानन्द की प्राप्ति हो—

स्वरूप चिंतन— वर्षा की सुहानी ऋतु है, श्रावण का महीना है, सब वृक्ष और लता न्हाये धोये हरे भरे लह लहार हे हैं। मंद, सुगंधित, शीतल पवन बह रहा है, सब के मनों में उमंगें हो रही

है। ऐसा देख कर प्रिया प्रियतम को भी भूलने की उमंग उठी, सब सखियों से सम्मति ली गयी, सब कि सम्मति से बरसाने का पहाड़ इस समाज के लिये नियत किया गया। पहाड़ के चारों ओर बन की हरियाली है, कल्पवृक्ष, तमाल, कदम्ब, पाटल, मौलसिरी, आम्ब, वट, जामुन, चम्पा आदि वृक्षों पर बेल छायी हुयी है, सुगन्ध वाले फूल फूल रहे हैं और अपनी सुगंध से महकते हुये भगवत् की सेवा कर रहे हैं, जहां तहाँ झरने झर रहे हैं, झरनों का सुहाना शब्द कानों में आकर मन को उछाल रहा है, बादलों की घटायें उमड़ २ कर आरही हैं, मंद २ गर्जन हो रही है, गर्जन में कभी बिजली चमक जाती है, मयूर, सारस, कोकिला, हंस, चकोरादि पक्षियों का शब्द मनोहर हो रहा है, शीतल, मंद, सुगंध पवन बह रहा है, मानो किशोर किशोरी के आनन्द और प्रसन्नता के निमित्त वह पहाड़ ऐसा शोभायमान और आनन्द वर्धक हो गया है कि प्रेम, शृंगार, प्रेम और प्रीति बरबस अणु २ में से झलक दे रहे हैं।

वहां एक कल्पवृक्ष के डाले में सखियों ने स्वर्ण सूत्र आदि का डोर का झूला डाला है, झूले में रत्न जटित सिंहासन डालकर जरी, मखमल, कीमखाब का बिछोना बिछाया है, बिछोने में मोतियों की झालर लगी हुई है, प्रिया प्रियतम सिंहासन पर विराजमान हैं, एक ओर चन्द्रावली, ललिता, विशाखा, श्यामला, और श्रीमती हैं, दूसरी ओर धन्या, रंगदेवी, पद्म, भद्रा आदि सखियां हैं। पखावज, वीणा, बाँसुरी, सारंगी, सितार, तम्बूरा, झांझ, मृदंग, ढोल आदि साज और सामान राग का दुरस्त करके सब सखियाँ प्रिया प्रियतम के झुलाने को खड़ी हुई हैं और रागमलार आरंभ करके दोनों को झुलाने लगी हैं। उस सभा और समाज का देख कर ब्रह्माणी, पार्वती, इन्द्राणी आदि सब देवियाँ भीत का चित्र हो गयी हैं और सब राग रागनियां बेसुध हो गयी हैं। उस समय की शोभा, शृंगार, सामान, बहार, हंसी, ठट्ठा, आनन्द का किस से वर्णन हो सक्ता है। सारा बन और पहाड़ परमानन्द और मंगल का देने वाला हो रहा है। जिसकी माया के कटाक्ष में करोड़ों ब्रह्मांड नाचते रहते हैं, उस मन मोहन के मोहने के निमित्त हर एक सखी ने मोहनी रूप धारण कर रक्खा है। सबके गोरे मुख चन्द्रपर अलकों की छटें छुटी हुई हैं, माथे पर टीका बेंदी हैं, बेंदी के ऊपर चन्द्रिका है, कानोंमें करण फूल और झुमके हैं। गलेमें पंचलड़ी, चम्पाकली और हैकलआदि हैं. हाथों में बाजू बन्द चूड़ा और जड़ाऊ कंगन हैं, अंगुलियोंन अंगूठा, छल्ले, आरसी हैं, सुरख, सब्ज, गलनारी, धानी, बेंजनी, नारंजी आदि रंगों के दुपट्टे और लहंगे, जरी, गोटे पट्टे से भरे हुये अपने २ अंगों पर पहिने हुये हैं, पैरों में पायजेब, झांझन, बछुये और पग। फूल हैं। सब सखियों के समाज में नट नागर ब्रज चन्द्र महाराज की कैसी शोभा है कि जिस प्रकार करोड़ों मूर्तिमान् छवियों में शृंगार विराजमान् हो! शोभा, सजावट, चमक, दमक सब अलंकार ऐसे चित्त चोर और मनोहर हैं कि सब सखियाँ मुख चन्द्र की चकोर हो रही हैं, एक हाथ किशोरी जी के गले में है और दूसरे हाथ से पंखे के झोंके से उलझी हुई अलकों को सुलझा रहे हैं, कभी चन्द्रावली और ललिता आदि से छेड़छाड़ है और कभी तिरछे नयनों से नयन मिलाकर सुन्दरता

और विलास देखते हैं, कभी राग गाने और सुनने पर चित्त है, और कभी वृषभानु नन्दनी से हंसी खेल और अंगमेल है, इस रस का अन्त नहीं है, इस लिये आगे कहा नहीं जा सका।

विजय

[ले० श्री आनन्दी प्रसाद जी मिश्र 'निर्द्वन्द']

प्राचीन समय की बात है कि श्रीवस्ती नगरी में एक धनवान कृपण वास करता था, प्राण पण से धन इकट्ठा करके वह अतुलनीय ऐश्वर्य का अधिकारी बनगया था। यद्यपि कृपण के भण्डार में अपरिमित धनरत्न भरे हुए थे, तथापि उसकी तृष्णा कम नहीं हुई थी, वह केवल धन इकट्ठा करने का अभिलाषी था, उसके धन से कभी किसी दीन दुःखी का भी भला नहीं हुआ था।

अकस्मात् एकदिन आग लगने से कृपण की धन राशि कोयलों के रूपमें परिवर्तित होगई। सोने चाँदी की जिस समुज्ज्वल प्रभा से कृपण का संकीर्ण हृदय आलोकित होरहा था वह सहसा अन्तर्हित होगयी! कोयलों की कालिमा कृपण के हृदय स्थित अन्धकार को भी घना करने लगी। इस घटना से कृपण को अपना जीवन एक दम शून्य और नीरस जान पड़ने लगा। धीरे धीरे आहार निद्रा त्याग कर वह मृतप्राय होगया।

कृपण के रिश्तेदार उसकी ऐसी दुर्दशा देखकर बड़े दुःखी हुए। वे उसे समझाने लगेकि "तुमधन के लिए क्यों दुःखित होते हो? तुम्हारा सम्पूर्ण धन इन कोयलों के समान ही बेकार था, कभी तुमने एक कौड़ी दान नहीं की, कभी तुमने धन व्यय नहीं किया, कभी तुम्हें रुपये खर्च करने की जरुरत नहीं पड़ी, फिर ऐसे बेकार धन के लिए रोना क्यों? यद्यपि तुम्हारी धन राशि कोयलों के रूप में बदल गयी है, तोभी साधुओंकी दृष्टि में अब भी वह धन ही है, तुम इन कोयलों को इकट्ठा करके बाजार में बेचने के लिए लेजाओ। शायद तुम्हारे भाग्य से वहां कोई साधु पुरुष आजाये, और उसके छूने से कोयले फिर सोना बन जायें।

मित्रों की यह बातें सुनकर कृपण के हृदय में नवीन आशा का संचार हुआ, और वह उन कोयलों को इकट्ठा करके बाजार में बेचने लेगया। बाजार में न मालूम कितने मनुष्य कितनी चीजें बेचने आये और कितने खरीद और बेचकर चलदिए पर किसीने कृपण के कोयलों की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा, जिन्होंने दया पूर्वक देखा, वे भी उसकी हंसी उड़ाते हुए आगे चलेगए। इस संसार में राख और कोयलों के बेचने वाले बहुत हैं, पर खरीदने वाले नहीं। जान बूझकर कौन अपना धन फेंकेगा? यह सब होने पर भी कृपण निराश नहीं हुआ। कोई साधु महात्मा इन कोयलों के बदले स्वर्ण देदे, इसी आशा से वह बैठा रहा।

इसी समय वहांपर कृपण गौतमी नामक एक दरिद्रा लड़की आरही थी, संसार में उसका कोई आत्मीय नहीं था, जो अनाथों का नाथ है, उसे छोड़कर बालिका का कोई आश्रयदाता नहीं था.

कृष्ण गौत्तमी घूमते घूमते कृपण के कोथलों के पास जा पहुंची, आश्चर्य सागर में डूबते हुए सबने देखा कि लड़की के छूते ही कोयले सोने के रूप में बदल गये। कृपण के आनन्द की सीमा न रही। वह बड़े आदर और आग्रह के साथ कृष्णा गौत्तमी को घर लेगया, और अपने पुत्र के साथ उसका विवाह करदिया। जो अनाथ-बालिका कल इधर उधर मारी मारी फिरती थी, वह आज धनी की स्त्री बनकर महासुख से समय बिताने लगी।

कृष्ण गौत्तमी सुख पूर्वक पति-गृह में रहने लगी, अब उसके ऐश्वर्य्य की सीमा नहीं थी दाम्पत्य प्रेम से उसका हृदय आनन्द-पूर्ण होरहा था। चारवर्ष पश्चात् पुत्र का भी मुख दर्शन हुआ। कृष्ण गौत्तमी के हर्ष का ओर छोर न रहा। अब वह समझने लगी, कि संसार में उससे बढ़कर सुखी शायद ही कोई हो।

× × ×

धीरे धीरे बालक बढ़ने लगा, उस का गिरते पड़ते इधर उधर दौड़ना, तुतलाकर मां को पुकारना कभी हंसते हंसते लोट जाना, कभी मोती जैसे आंसू बहाना, कभी माँके अंचल को पकड़ कर खींचना, कृष्ण गौत्तमी के हृदय को पुलकित करने लगा। पर सब दिन समान नहीं जाते, किसी का सुख कभी स्थिर नहीं रहता, कृष्ण गौत्तमी के सुख के दिन भी समाप्त होने को आए। उसका जीवनाधार, एक मात्र आशास्थल, प्राणों से प्यारा पुत्र एक दिन माता का प्रेम बन्धन तोड़कर काल गर्भ में समागया। पुत्र को खोकर कृष्ण गौत्तमी ज्ञान को भी खोबैठी, वह शोक में उन्मत्त होकर मृत पुत्र को छाती से लगाये हुए गांव गांव, नगर नगर, देश देश, में मृत संजीवनी औषधि की खोज करने लगी।

कृष्ण गौत्तमी मृत पुत्र को लेकर पागलों की भाँति सर्वत्र फिरने लगी। उसे न भूख प्यास का ध्यान था। न सोने बैठने का। उसका समस्त सौन्दर्य, लावण्य जाता रहा। वह जिसको देखती थी, उससे कहती थी कि "क्या मुझे मृत संजीवनी देसकते हो?" संसार में जिसका कोई नहीं जानता वह उसे कौन देता?

एकदिन वह इसी प्रकार रोते रोते रास्ते में में जारही थी, कि उसकी दृष्टि एक साधु पर पड़ी, उसने सोचा कि यह साधु उसके मृत पुत्र को पुन जीवित कर सकता है। यह उसके पैरों पर गिर पड़ी, और बालक को फिरसे जीवित करदेने की प्रार्थना करने लगी यह देख कर साधु को बड़ा दुःख हुआ, और उसने सोचा, कि इस स्त्री को माया में फंस कर बड़ा कष्ट सहना पड़रहा है। उसने कृष्णागौत्तमी से कहा कि "देवी, मृत पुत्र को जीवित करने की शक्ति मुझमें नहीं है, अमुक स्थान पर जाओ, वहां के महात्मा तुमको उपयुक्त औषधि देंगे।"

अमुक स्थान पर पहुंच कर कृष्ण गौत्तमी महात्मा के पैरों पर गिर पड़ी और दीन, कम्पित वचनों से कहने लगी, "हे देव, मुझे मृतसंजीवनी औषधी देकर मेरे पुत्र को पुनर्जीवित करो।"

महात्मा बोले-"बत्से, मुझे औषधि मालूम है, परन्तु तुमको उसकी सामग्री संग्रह करके लानी पड़ेगी। तुम एक मुट्ठी सरसों ले आओ, मैं तुमको औषधि बतला दूंगा।"

एक मुट्ठी सरसों के ले आने से ही मृत पुत्र जीवित हो जायेगा, यह सुनकर कृष्णागौत्तमी पुलकित होकर उसे लाने को चली। तब महात्मा ने कहा:- जाओ, जिस घर में कभी कोई न मरा हो, ऐसे घर से थोड़ी सी सरसों शीघ्र ले आओ।

कृष्णागौत्तमी मरे हुए बालक को लेकर सरसों के लिए घर घर फिरने लगी। पर मृत्यु के अधिकार से बाहर उसे कोई घर देखने को न मिला। सभी कहने लगे, कि जिस परिवार में कोई न मरा हो, ऐसा घर तुम कहां पाओगी? संसार में मृत्यु स्वाभाविक बात है, इसके पञ्जे से आज तक कोई नहीं बचा।

क्रमशः संध्या होने लगी और कृष्णागौत्तमी का आशा पूर्ण हृदय अवसन्न होने लगा, निराश होकर वह नगर के बाहर चलीगयी और शोक सागर में डूबती, उतराती वहाँ बैठगयी।

धीरे धीरे सूर्य अस्त होगया, चारों ओर अन्धेरा फैलने लगा, कहीं भी किसी प्रकार का शब्द सुनाई नहीं पड़ता था। प्रकृति, शान्त और गम्भीर थी, कृष्णागौत्तमी इस अन्धेरे और निस्तब्धता की समानता अपने हृदय की दशा से करने लगी।

इसी समय दूर पर नगर में दीपक जलाये जाने लगे। कृष्णागौत्तमी एकाग्र मन से प्रकाश की ओर देखने लगी। क्रम से रात्रि अधिक होती गयी और एक एक करके नगर के समस्त दीपक बुझा दिए गए।

अब तेजः पुञ्ज महात्मा, शोकाकुला कृष्णागौत्तमी के सामने स्वयं आकर खड़े होगए। उस समय ऐसा ज्ञात होता था, मानों एक ओर मूर्तिमान ज्ञान दण्डायमान है और दूसरी ओर मृत-पुत्र को छाती से लगाए जगत की माया रो रही है। बड़ा निराला दृश्य था, प्रकृति टकटकी लगाकर इस अपूर्व दृश्य को देखने लगी।

रात्रि की निस्तब्धता को भंग करके महात्मा कहने लगे:-देखो, नगर के मकानों में जो दीपक अब तक जल रहे थे, वे एक एक करके बुझ गए। देवि, मानव-जीवन इस दीपशिखा के समान ही क्षणस्थायी है। वह कुछ समय के लिए जल उठता है, और कुछ देर प्रकाशित रह कर अन्त में अन्धकार में डूब जाता है, यह मानव जीवन का गूढ़ रहस्य है।

इन बातोंको सुनकर एकाएक कृष्णागौत्तमी चैतन्य होगयी। महात्मा के उपदेश से उसकी मोह माया दूर होगयी। वह मृत-पुत्र केशव को वहीं जल प्रवाह करके चलदी।

एक दिन जिसको शोक ने विजय किया था, ज्ञानवीर महात्मा के उपदेश से उसने शोक पर विजय पाई।

निठुराई

[ले० श्री मदनगोपाल जी 'सिंहल']

श्याम नहीं उचित तेरी निठुराई,
चितवन सों मो चित चुराकर अब क्यों आंख चुराई॥
हमने तो रो रो तेरे दर दर्शन की टेर लगाई।
पर तैंने नहीं ध्यान दियो टुक प्यारे कुंवर कन्हाई॥
क्या अपराध कहो तो प्रियतम जो सुधि दीन्ह भुलाई।
सुनी दयासिन्धु कहलाते क्यूं न दया दिखलाई॥
श्याम नहीं उचित तेरी निठुराई।

जीवन रहस्य

(ले० श्री लालचन्द जी)

संसार में जीवन ही एक सार वस्तु है, किन्तु बहुत कम मनुष्य हैं जो जीवन की ओर जारहे हैं। प्रायः बहुत से अपने विचार और आचरण से मृत्यु-पथ को जीवन मार्ग जान कर उस पर चलरहे हैं। देखा जाता है कि जितना यत्न अन्य नश्वर वस्तुओं के एकत्र करने में किया जाता है उसका कुछ अंश भी जीवन लाभ करने में व्यय नहीं किया जाता। जैसे विना स्रोत के जल वाले तालाब में बदबू आने लगती है वैसे ही विना नित्य नव- जीवन की प्राप्ति के जीवन एक भारसा दिखाई देता है और ऐसे जीवन में आनन्द नहीं रहता।

इसमें कुछ संदेह नहीं कि संसार के प्रवाह में बह जाना सुगम है, किन्तु क्या कभी विचार किया है कि बहने और तैरने में क्या अन्तर है? बहता हुआ परवश होता है और तैरने वाला स्वाधीन होता है और जल तरंगों का आनन्द लेता है। संसार को दोनों भोगते हैं कामी भी संयमी भी। कामी मनुष्य पराधीन होता है और संयमी अपने ऊपर अधिकार रखता है। संयमी को ही जीवन का आनन्द प्राप्त होता है, संयमी ही जीवन का आनंद लेता है। संयमी ही अनन्त जीवन परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ कर नित्य नूतन जीवन लाभ करता है। कामी कभी ईश्वर सहवास का आनन्द नहीं अनुभव कर सकता। कामी विचार शक्ति और मनोबल के रहस्य नहीं जान सकता। वह आनन्द बाहिर ढूँढता है। संयमी के भीतर ही आनन्द का प्रवाह बहा करता है।

स्वतंत्र वही रह सकता है जो नियमों के आधीन हो। जिसकी जीवनचर्या अनियमित है वह मन के वेग के पीछे भटकता हुआ अथवा इन्द्रिय-तुष्टि के चक्कर में पड़ा हुआ इन्द्रियजन्य क्षणिक सुख को आनन्द मानता हुआ चंचल चित्त अशान्त होकर थक कर नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। जिसका आहर, विहार, स्वप्न, जागरण नियमित है और कर्तव्य निष्ठा जिसकी दृढ़ है वह ही कार्य कुशल है, वही कर्मयोगी है, उसीको उस सद्ज्ञान की प्राप्ति होती है जिसे पाकर साधक कृतार्थ हो जाता है। ऐसा मनीषी वह तेज प्राप्त करता है कि साधारण मनुष्य उसकी प्रतिमा को आँख भर के देख भी नहीं सकते। नियमित जीवन में बल है, ऐश्वर्य है, स्थिरता है, और अलौकिक ओज-शक्ति है। भगवान् स्वयं अपने नियमों में ही ब्रह्मांड का प्रबन्ध करते हैं। सुनियमित जीवन ही जीवन है अन्य प्रकार का जीवन तो केवल दिनकटी है। भगवान् के 'ऋत' और 'सत्य' सरल नियम मनुष्य का कल्याण करते हैं। मनुष्य जब उन पर श्रद्धा पूर्वक विचार करता है तो निष्पाप हो जाता है।

प्रातः जब भगवान् की ओर से शुद्ध जीवन प्रद प्राण का संचार जगत् में होता है उस समय जो प्राण शक्ति को अपने अन्दर ग्रहण कर लेता है वह दिन भर शक्ति सम्पन्न रहता है और अपने कार्यों को प्रसन्नता पूर्वक करता है। भगवान् नित्य

प्राण- शक्ति भेजते रहते हैं किन्तु थोड़े मनुष्य उस प्राण-शक्ति के रहस्य की ओर ध्यान देते हैं। भगवान् प्राणमय, जीवनमय, आनन्दमय हैं। भगवान् की भेजी हुई नव-जीवन प्रदायिनी शक्ति में उल्लास है, बल है और शान्ति है। भगवत् शक्ति में अलौकिक जीवन प्रवाह छुपा रहता है। भगवत् शक्ति विद्युत शक्ति से भी अधिक बलशाली है। संसार में यह विख्यात है कि दृश्यमान जगत से अदृश्यमान जगत अधिक शक्तिशाली है। हम विद्युत के चमत्कार जानते ही हैं। किस प्रकार मशीनें चलती हैं, पंखे हिलते हैं रोशनी होती है आदि। पर हम छुपी हुई इस विद्युत शक्ति को आकाश में देख नहीं रहें। यह तो हुई अधिदैवत की बात। हम जानते हैं कि मन बुद्धि अहंकार हमारे शरीर के अंगों से अधिक बलशाली हैं। वास्तव में शरीर के अंगों का निमंत्रण इन ही द्वारा होता है। इसी प्रकार भगवान् की प्राण- शक्ति अदृश्य होती हुई महान् बलवती हैं और सारे संसार में जीवन संचार करती है। इस शक्ति से शक्तियुक्त होकर जब पुरुष संसार में अपना कर्तव्य पालन करता है तो उसके कर्तव्यों में भगवान् के सद्गुणों की झलक दिखाई देती है। भगवान् की प्राण- शक्ति हम तक अधिक मात्रा में उषा के समय से पहिले और प्रथम सूर्य्य किरणों के समय तक आती रहती है। उसके आगमन की सूचना पक्षी प्रति दिन देते हैं परन्तु मनुष्य आलस्य वश उसकी अवहेलना करते हैं। वह समय है जब कि भगवान् की शरण जाने में जीवन का रहस्य खुलता है।

सदाशिव

[ले० श्रीमती शकुमारी "विदुषी"]

राजत वाम विभाग में हैं जिनके,
गिरिजा रति सी धनि भामिनी ॥१॥
भ्राजत शीश पै इन्दु नवेलित,
है जेहि के बहु षोडशी कामिनी ॥२॥
नाचत ताण्डव नृत्य बहु गति,
रंगनि रूप धरैं दिन जामिनी ॥३॥
साजत पातु वः ऐसे सदाशिव,
दार जिनै "अज" हैं जग स्वामिनी ॥४॥

धर्म का प्रत्यक्ष फल

[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी]

एक मंदिर में बैठे हुए बहुत से भक्त बात चीत कर रहे थे। उनमें से किसी ने कहा कि मैं बहुत भक्ति करता हूं किन्तु उसका यथोचित कुछ फल नहीं दिखाई पड़ता। यह सुनकर दूसरे ने कहा कि इस में भक्ति का कुछ दोष नहीं है समय बदल गया है इससे ऐसा होता है। प्रत्यक्ष फल तो सतयुग में मिलता था। इस समय तो कलयुग है, इस से उसका फल भविष्य में मिलेगा। तब तीसरे ने कहा यह क्यों ? भविष्य में जिसका फल मिले वह भक्ति किस काम की ? ऐसा विश्वास कोई भी नहीं रख सकता। यह तो आखों देखते मिलने का समय है। देखो सब बातों में नकद ही चलता है उधार की तो कहीं बात ही नहीं है, दो पैसे का पोस्टकार्ड

लेने जाओ तो भी नकद, रेलका टिकट लो तो वह भी नकद, तार देने जाओ तो पैसा पहिले दो, कहीं से माल लाओतो रुपया पहिले देदो, पीछे माल बिकेगा तब बिकेगा। लड़के को स्कूल में भर्ती कराने जाओ तो फीस एक महीने की पेशगी दे दो, पीछे वह लड़का पढ़ने जाय अथवा न जाय। एक छोटी सी कोठरी भाड़े लेने जाओ तो जमानत दो अदालत में मुकदमा लड़ने जाओ तो चाहे परिणाम तुम्हारे पक्ष में हो या विपक्ष में, किन्तु कोर्ट फीस पहले ही दे दो। अंग्रेज सरकार के राज्य में उधार की कोई बात ही दिखाई नहींपड़ती और यदि उधार रखोगे तो अच्छा मनुष्य भी कुछ दिनों खराब समझा जाने लगेगा। तब विचार तो करो कि अपने सिर पर ऋण लादकर प्रजा से सूद वसूल करने वाले अंग्रेज के राज्य में तो नकद व्यवहार हो और लक्ष्मी के पति ईश्वर के राज्य में उधार चले ? यह कैसे होगा ?

तब एक और भक्त ने कहा कि अंग्रेजी राज्य दयालु है, न्यायी है और प्रतापी है इससे इस में तो नकद ही चलेगा। किन्तु धर्म तो पंगुल है, उसे तो जब कोई चलावेगा तभी तो चलेगा। इस से इस में तो ऐसा ही होगा, इसमें नकद लेन देन कैसे होगा ? इसका फलतो धीरे धीरे मिलेगा ही।

यह सुनकर प्रथम भक्त ने कहा "राम राम" यह तुम क्या कहते हो ? यह क्या कभी हो सकता है ! हरिजनों के रहते कहीं धर्म पंगुल हो सकता है ! धर्म को पंगुल कहना तो ईश्वर का अपमान करना है। क्योंकि हमारे शास्त्रों में स्थान२ पर कहा है कि धर्म का बल चौदह लोकसे भी अधिक है। धर्म का प्रकाश अनंत ब्रह्मांडों को प्रकाशित कर रहा है। धर्म के कारण ही यह जगत् टिका हुवा है "तप अधार सृष्टि भवानी" धर्म के कारण ही देवों ने देवत्वपाया है, धर्म से ही मनुष्य मोक्ष पासकता है, धर्मसे ही आत्मा, परमात्मा की एकता हो सकती है। मनुष्य जन्म के साधन करने वाले उत्तम से उत्तमसाधन कर्म उपासना और ज्ञान हैं वे भी धर्म के अंग हैं। वेद स्वयं धर्म का गुण गा रहा है और धर्म की रक्षा के लिये ही निरंजन, निराकार, अगम्य, अखंड, अलक्ष्य, अविनाशी, अजर, अमर, अव्यक्त, कूटस्थ, अनंत, सर्वन्यायी, निराधार, सर्वाधार सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान, अनंत ब्रह्मांड के नाथ परमात्मा ने अनेक बार अवतार लिया है। इसमें श्रीमद्भगवत् गीता प्रमाण है

"यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

इतना ही नहीं, आनंद स्वरूप ईश्वर स्वयं धर्म की मूर्ति हैं। "धारयति इति धर्मः" यानी जो इस दृश्य प्रपंच और अदृश्य स्वर्गादि सर्व को धारण किये हुए हैं उसका नाम धर्म है। भाइयो! महान आश्चर्य है! कि ऐसे महाप्रतापि धर्म को पंगुल समझना, हमारी समझ में तो समझने वाले की ही भूल है और ऐसा भाग्य शाली ऐश्वर्य वाला धर्म अपनी सेवा का फल शीघ्र न देकर उधार रखता है यह समझना भी धर्म का अपमान है और ईश्वर का रूप होने से धर्म का अपमान करना ईश्वर का अपमान करना है।

उनमें एक भक्त बोलने लगा "भाइयो सुनो, ईश्वर तो एक है और धर्म तो अनेक हैं। भला

धर्म ईश्वर का स्वरूप कैसे हो सकता है विचार तो करो ?"

तब प्रथम भक्त बोला "भाई यह धर्म नहीं है जिसे तुम धर्म समझ रहे हो यह तो कर्म है, उपयुक्त जो सर्व को धारण किये हुए है वही धर्म है कर्म नाना है धर्म नाना नहीं है धर्म तो एक ही है। यदि तुम ऐसा ही मानो तो इसमें भी कुछ हानि नहीं। तो भी भक्तराज चरण दास जी ने अपने भक्ति सागर ग्रंथ में कहा है कि "तूही एक अनेक भयो है जिन जानी तिन जानी। तेरे बहु रूप बहु बानी" इत्यादि। अरे भाइयो! शास्त्रों में पुकार पुकार प्रभु ने स्वयं कहा है कि धर्मका फल कभी भी व्यर्थ नहीं जाता।

"रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय इन्द्रो मायाभिः पुरु रूपईयते युक्ताह्यस्य हरयःशता। दशेति अयं वै हरयोऽयं वै दश सहस्राणि बहूनि चानन्तानि च तदेतदब्रह्म पूर्वमनपर मनंतरमबाह्यमयमात्माब्रह्म सर्वानुभूरित्यनुशासनम्" बृ० दा० २-५-१९

अर्थ—वह परमात्मा हर एक रूप प्रतिबिंब रूप हुआ वह प्रतिबिंब रूप क्यों हुआ? उसका उत्तर यह है इस आत्मा वह प्रतिबिंब रूप आत्मत्व सिद्धिके लिये है। यानी यदि प्रतिबिंब न हो तो बिंब का ज्ञान नहीं हो सकता। परमात्मा नाम रूप उपाधि करके बहुत रूप वाला बन जाता है, जैसे रथ में लगे हुए घोड़े रथी को अपने सामने के देश की तरफ ले जाते हैं तैसे ही तैसे इस प्रत्यगात्मा को शरीर में युक्त हुई विषय हरण करने वाली इन्द्रियां भी ले जाती हैं। यदि वे इंद्रिया दससौ हैं तो यह प्रत्यगात्मा भी निश्चय कर के दससौ है। यदि इन्द्रिया दश हजार हैं तो उतना यह आत्मा है यदि वे बहुत हैं यह भी असंख्य है यह जाती रहित है व्यवधान रहित है, सर्वव्यापी है, यही प्रत्यगात्मा ब्रह्म है सबका अनुभव करने वाला है। इस प्रकार हे मैत्रेयि यह सब वेदांत का उपदेश है। इतना ही नहीं किन्तु एक का दश गुणा सौ गुणा, सहस्रगुणा लक्षगुणा और अनन्त गुणा होकर मिलता है, और वह भी उधार नहीं किन्तु शीघ्र ही काम करने के पहिले ही विचार करने के साथ फल मिलजाता है। यदि ऐसा न होतो धर्म का बड़प्पन ही क्या रह जाय! जिस प्रकार भोजन के प्रत्येक कण में भूख मिटाने की शक्ति है, बल है, आनन्द और तृप्ति है उसी पुकार धर्म के प्रत्येक काम में तथा प्रत्येक विचार में ईश्वर की कृपा है!

धर्म से ही मानसिक बल है, उच्च भावना है, हृदय की पवित्रता है, अपने स्वार्थ का त्याग है। धर्म से ही जीवन मिलता है और उसके किसी भी काम से या किसी विचार से उसी समय उसी प्रमाण में आत्मिक आनन्द मिलता जाता है। किन्तु हमारा प्रेम बहुत कठोर होगया है, बहुत स्थूल और जड़ पड़ गया है, दूसरे तुच्छ विषयों में बहुत दूर तक दौड़ गया है। इससे वर्तमान में होने वाले छोटे छोटे भले परिणाम हमारी समझ में नहीं आते। दूसरे यह कि महा मंगलकारी शांति दाता परमात्मा ऐसा दयालु है कि हम अपने मन की निर्बलता के कारण छोटी छोटी वस्तुयें उससे माँगते हैं। किन्तु वह अपने बड़प्पन के कारण बहुत बड़ी बड़ी चीजें देता है। जब कि हम सांसारिक वस्तुयें माँगते हैं तब वह स्वर्ग की वस्तु हमें दे देता है, हम इन्द्रियों का सुख माँगते हैं तो वह

आत्मा का सुख दे देता है, वासना बढ़ाने वाली चीजें हम मांगते हैं तो वह उसके बदले में छुड़ाने वाली वस्तुयें दे देता है। जब हम तुच्छ इच्छाओं की पूर्ति चाहते हैं तब वह जीवन को सार्थक करने वाली शक्ति दे देता है। किन्तु हम अपनी लगन तथा वृत्तियों की जड़ता के कारण मिश्र रूप में मिले हुये इन बड़े लाभों को समझ नहीं सकते, इस से हमको ऐसा मालूम पड़ता है कि धर्म का फल शीघ्र नहीं मिलता। किन्तु ऐसा समझना भूल है, इससे भाइयो याद रखो कि धर्म का फल तत्काल ही मिलता है।

इतना ही नहीं एक का अनेक गुणा होकर मिलता है किन्तु हमारी मांग की अपेक्षा वे फल भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं और भिन्न प्रकार से मिलते हैं, दूसरों की ओर से मिलते हैं और उसका प्रभाव भी दूसरे प्रकार का होता है। इससे स्वार्थ वृत्ति से जड़ पड़गई हुई हमारी लगन प्रत्यक्ष रीति से इन फलों को देख नहीं सकती। जिससे हमें ऐसा लगता है कि हमें धर्म का फल नहीं मिल रहा है, किन्तु धर्म का फल नहीं मिलता ऐसा समझना धर्म के ऊपर से अपने विश्वास को ढीला कर देने के समान है, नास्तिकता को उत्तेजना देना है। यह हमारी अयोग्यता है और ऐसा समझना धर्म के स्थापक धर्म के चलाने वाले, उसकी रक्षा करने वाले धर्म स्वरूप, आदि गुरु, सर्व शक्तिमान् ईश्वर का अपमान करने के बराबर है। क्योंकि सब प्रकार के फलों का दाता दयालु ईश्वर है और वह स्वयं धर्म स्वरूप है, इससे और बातों की अपेक्षा धर्मका फल सबसे पहिले मिल सकता है।

टुक विचार तो करो कि जब हम अपने घर के पास वृक्ष लगाते हैं और उसकी सेवा करते हैं और उसकी आन्धी पानी से रक्षा करते हैं तो वह हमें शीघ्र लाभ पहुंचाता है। छाया मिलती है, आंखों को ठंडक पहुंचती है, शुद्ध हवा मिलती है। पशु पक्षियों को विश्राम करने का स्थान मिलता है डाल, छाल, पत्ता और फूल आदि दवाके काम में आते हैं। यद्यपि फल ऋतु के समय पीछे मिलता है परन्तु इस प्रकार के कुछ लाभ तो हुआ करते हैं। इसी प्रकार देवत्व स्वर्ग और मोक्ष आदि आत्मा के साथ सम्बन्ध रखने वाले धर्म के बड़े फल ऋतु के समय अर्थात् मरने के बाद मिलें, परन्तु धर्म के सामान्य लाभ तो धर्म का पालन करने वालों को इसी जीवन में प्राप्त होते हैं। जैसे राजा की नौकरी करने वाले को वेतन मिलता है तथा अधिक और उत्तमता से काम करने से यथा समय पुरस्कार मिलता है, इसी प्रकार अखण्ड आनन्द स्वरूप सच्चिदानन्द परम कृपालु परमात्मा की हम धर्म के मार्ग से सेवा करते हैं। इसका वेतन यही है कि इस का लाभ इस जीवन में ही हमें मिलता है और मरने के बाद जो लाभ हमें मिलता है वह पुरस्कार है।

ऐसा होने से तथा मनुष्यों के अपने मन की कृपणता के अनुसार स्वार्थ में लिप्त रहने से वह साधारण वेतन से अर्थात् जीवन में होने वाले धर्म के लाभों से संतुष्ट नहीं होता और पुरस्कार का लोभ बनाये रहता है। वेतन को नहीं किन्तु पुरस्कार को ही धर्म का फल समझा करता है ऐसा समझ कर बहुत से मनुष्य कहते हैं कि धर्म का फल मरने के बाद ही मिलता है, किन्तु ऐसा कहना हरिजनों को शोभा नहीं देता,

यह विचार अपूर्ण है, इसके विरुद्ध मैं देखता हूं कि धर्म पालने वालों का आचरण शुद्ध होता है, उनके मन में शांति होती है, हृदय में पवित्रता होती है और उनका मुखड़ा चंदन होता है। वे दूसरों के लिये थोड़ा बहुत अपना स्वार्थ त्याग करते हैं, जगत् में ईश्वर की महिमा बढ़ाने की इच्छा रखते हैं। पाप से बचने का प्रबन्ध करते हैं, सबके साथ भलाई करना चाहते हैं और उनका मन उच्च विचार में लीन रहता है। तुम उसके साथ एक पापी की तुलना करते हो। देखो ऐसी उत्तमता क्या धर्म के लाभ में नहीं है? भाइयो! धर्म का लाभ प्रत्यक्ष है, इसी समय मिलता है और हमारे प्रति दिन के व्यवहार में वह काम में आता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इससे धर्म का लाभ इस जीवन में ही और तुरंत ही मिलता है। इसका सब को विश्वास दिलाने का प्रयत्न करो यही सब से उत्तम धर्म है।

उपालम्भ

[ले० श्रीयुत श्रीपति जी]

धूल में मिलाते उसे, करते जिसे हैं प्यार,
कोई बतलाये ऐसा प्यार कौन काम का।
क्योंकर छुड़ाते घर, द्वार और परिवार,
रखते कहीं का भी न, बनका न धाम का॥
जादू सा भरा है भला, उनके दृगों में कौन,
वह तो बनाते सदा, दास बिना दाम का।
उनकी हंसी में छिपा रहता रहस्य गूढ़,
उनकी दया का दिखलावा बस नाम का॥

उपासना का उत्कर्ष कर्म तथा ज्ञान की अपेक्षा से

[ले० श्री भक्त राम मथुराप्रसाद जी]

चारों वेद तथा उनका सार भगवत् गीता में प्राणी के उद्धार तथा कल्याण के साधन तीन ही कहे गये हैं। कर्म, ज्ञान, उपासना या भक्ति इन तीनों में साक्षात् परम आनन्द (मोक्ष) का दाता कौन है निर्णय इसीका कर्तव्य है कर्म प्रधान वादी पूर्व मीमान्सक बतलाते हैं कि कर्म ही मुख्य साधन और अवश्य कर्तव्य है वेदों के सारभूत गीता में भगवत् वचन स्पष्ट है।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचार,
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः।

निर्लिप्त होकर निरंतर विधिवत् कर्म करना चाहिये इसी से परम पुरुष की प्राप्ति होती है। (कर्मणैवहि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः) जनक आदि बड़े २ ज्ञानी महानुभाव कर्म के द्वारा ही भली प्रकार सिद्धि को प्राप्त हुए हैं इत्यादि अनेक प्रमाणों से कर्म की प्रधानता सिद्ध होती है-

ज्ञान प्रधानवादी कहते हैं कि:-ऋते ज्ञानान्न-मुक्तिः॥ इस श्रुतिके अनुसार ज्ञान बिना मुक्ति नहीं हो सकती। और दूसरी श्रुति साफ कहती है कि (तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते ऽयनाय) उस ब्रह्म को जान कर ही जन्म मरण से छूटता है और कोई दूसरा मार्ग कल्याण के लिये नहीं है और ज्ञानियों का कथन है कि अन्तःकरण में तीन दोष रहते हैं मल-विक्षेप और आवर्ण-अनेक

जन्म के पापों का संस्कार मल है- चंचलता को विक्षेप कहते हैं। और अविद्या का नाम आवर्ण है। निष्काम कर्म करने से मल दोष मिटता है मन की चंचलता (विक्षेप) उपासना से दूर होती है और अविद्या रूप आवर्ण ज्ञान से निवृत्त होता है। इसलिये मुख्य साधन मुक्ति का ज्ञान ही है कर्म और उपासना साक्षात् साधन मुक्ति के नहीं किन्तु अन्तःकरण की शुद्धि होकर इन से परम्परया परमार्थ सिद्धि हो जाती है।

उपासना प्रधान वादी अपना सिद्धान्त यह वर्णन करते हैं कि ज्ञान नाम जान लेने का है। किसी पदार्थ को भली भांति जान लेने से वही कहा जा सकता कि उसकी प्राप्ति होगई। यदि हम को निश्चय हो जाय कि अमुक राजा महाराजा ऐसी सूरत शकल का है। इतनी उसकी संपत्ति है इतनी शक्ति और बल उसमें है तो केवल ऐसे जानने से उस से मिलन का प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। इसी प्रकार परमात्मा के ज्ञान की अपेक्षा उसकी सेवा भक्ति का प्राप्त होना अधिक कल्याण तथा आनन्दकारी है:-

अब विचारणीय यह है कि यद्यपि कर्म उपासना ज्ञान तीनों ही आवश्यक और कल्याणकारी हैं असंग होकर निष्काम कर्म करने से अन्तःकरण शुद्ध होकर ज्ञान द्वारा मुक्ति मिलजाती है और ज्ञान से आवागमन से छुटकारा होकर जीव ब्रह्म रूप हो जाता है। तथापि शुद्ध भाव और प्रेम लक्षणाभक्ति से जो प्रभु के सामीप्य का लाभ प्राप्त होता है और परमानन्द मिलता है वो ज्ञान द्वारा तद्रूप हो जाने से कदापि नहीं हाथ आता।

जैसे मिसरी खाने वाले को मिश्री का स्वाद आता है मिश्री बन जाने से स्वाद लेने वाला ही नहीं रहा तो क्या लाभ हुआ इसी प्रकार:- रसो वै सः। इस श्रुति के अनुसार रस रूप ब्रह्म की तद् रूपता की अपेक्षा रसास्वाद भोक्ता को ही परम आनन्द प्रापक कह सकते हैं- ब्रह्म का स्वरूप (सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्म) सत् चित् आनंद बतलाया गया यदि मनुष्य महाकठिन, क्लेशसाध्य ब्रह्मज्ञान को प्राप्त भी करले तो परिणाम क्या हुआ:- ब्रह्म विदित्वा ब्रह्मैव भवति-ब्रह्म रूप होकर भव मुक्त होगया परन्तु सालोक्य सामीप्य सारूप्य मुक्तियों का पाने वाला भक्त (प्रेमी उपासक) जो दिव्य अलौकिक धाम में त्रिपाद विभूति का अपूर्व आनन्द ग्रहण कर लेता है सो आनन्द उस ब्रह्म में समा जाने वाला ज्ञानी कब पा सकता है इसलिये प्रेमा भक्ति को कर्म ज्ञान दोनों पर उत्कर्ष सिद्ध होता है।

अपूर्ण

आह्वान

[रचयिता श्री रामसेवकसिंह जी 'श्याम']

आतुर हैं, आओ नाथ, ग्वाल संग खेलन को,
नित गोपिका के संग रास को रचाइये।
है कर समोद मन भाई वेणुका को ले,
गाकर सुरीले तान सुधा सरसाईये॥
श्रवण कराये गीता गाथा का पवित्र पाठ,
देकर स्वभक्ति उर छन्द से छुड़ाइये।
हूँकर अनाथ दास शरण तिहारो नाथ,
करुणानिधान क्यों न सत्वर सिधाइये॥ १॥

धर्म और उसका प्रचार

[ले० श्री पं० हरिकृष्ण जी वैद्य]

मनुष्य जब अपनी आभ्यन्तरिक निश्चल सात्विक विवेक बुद्धि द्वारा विचार करता है, तब उसे अपने आप की सत्ता, इस प्रत्यक्ष दृष्य स्थूल विनाशी शरीर से अलग दिखलाई देती है। हिन्दू दर्शन शास्त्रकारों ने इसी सत्ता को 'आत्मा' नाम से पुकारा है। यह सत्ता, अजर, अमर, अविनाशी अविकारी एवं सच्चित् आनन्द स्वरूप और नित्य है। यद्यपि इसके स्वरूप का यथार्थ दर्शन उन्हीं महात्माओं को होता है जो अपने जीवन का मुख्य ध्येय आध्यात्मिकता को ही बना चुके हैं, और गुरु तथा शास्त्र के उपदेशानुसार बुद्धि रूपी समुद्र की खाड़ी में छुपे हुए इस उज्वल मोती को पाने के लिये जो निर्भय और निःशङ्क होकर गोता लगाते हैं। वे ही, इस गुप्त हित गुह्य वस्तु को प्राप्त करके मानव जीवन के सफल बनाने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं, तथापि इस आत्म तत्व के नित्यत्व का अनुमान मनुष्य अपनी इस आन्तरिक भावना द्वारा भी कुछ कुछ कर सकता है। इसका उल्लेख भगवान् व्यास ने योग दर्शन के व्यास भाष्यमें इस प्रकार किया है:-

"मा न भुवं भूयासं" अर्थात् मैं कभी न हूं, ऐसा न हो, किन्तु सदा ही बना रहूं।

यह मनुष्य की स्वाभाविक भावना उसके सिवाय उसके नित्यत्वकी पूरी परिचायक है। इसके आत्मवादियों में इसके नित्यत्व के विषयमें तिलमात्र भी मतभेद नहीं है। अतः इस विषय में ज्यादा कुछ न लिख कर हम अपने उसी प्रकृत विषय पर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं।

यही नित्य आत्मा गीता में सुख दुःख का भोक्ता बतलाया गया है।

"पुरुषः सुख दुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते"

अर्थात्- सुख दुःख के भोक्तृत्व में यह पुरुष ही हेतु माना गया है।

इसी पुरुष को त्रिविध दुःखों से निवृत्त करके, इसके निजी सुख स्वरूप का विकाश करने वाले आचार विचारों का ही नाम 'धर्म' है। यद्यपि संसार के अनेक महापुरुषों ने अपनी अपनी दृष्टि कोण के अनुसार अनेक प्रकार के आचार विचार कल्पित किये हैं, और वे महापुरुष निःसंदेह अपने आपको और दुःख पीड़ित सांसारिक पुरुषों की जीवनी को सुखमय बनाने के लिये चेष्टा करते रहे हैं। उनने जो कुछ पथ प्रदर्शित किया है, वह चाहे टेढ़ा सीधा भले ही हो, पर है अवश्य मनुष्य को परमात्मा की ओर ले जाने वाला। पं० पुष्पदन्त जी ने इसका खूब अच्छा चित्रण, महिम्न स्तोत्र में किया है:-

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति,
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिल नाना पथजुषां,
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

अर्थात्- वेद त्रयी, सांख्य, योग शैवमत, वैष्णव मत, आदि अनेक प्रकार के मत मतान्तर, भिन्न भिन्न मार्ग से चलते हैं, और सभी अपने अपने मत को यह अधिक पथ्य है, यह सब से अच्छा है, ऐसा कहते हैं। तथापि हे! परमात्मन् जैसे टेढ़े और सीधे रास्तों से जाने वाले नदी

नालों का गम्य स्थान एक समुद्र है, वैसे ही अपनी २ विचित्र रुचि के अनुसार सरल और टेढ़े रास्ते से चलने वाले उन सब का गम्य स्थान, एक तूही है।

महिम्न के इस एक श्लोक को अगर भारतीय भिन्न भिन्न मतावलम्बी हृदयङ्गम करलें, तो उनमें पारस्परिक अविश्वास और अशान्ति सदा के लिये विदा हो जाय। परन्तु इसके विपरीत आजकल जो दृश्य दिखठाई दे रहा है। वह भयानक जिहालतपने का नमूना है। अपने से भिन्न विचार वालों को, पतित, पापी, दुराचारी कहना तो एक मामूली सी बात होगई है। अपने अनुकूल विचार रखने वाला मनुष्य चाहे आचरण में दुराचारी हो, तो भी वह मान्य समझा जाता है, और भिन्न विचार वाला चाहे अपनी अपेक्षा क्यों न श्रेष्ठाचरण वाला हो तो भी उसे घृणित और दण्डनीय समझते हैं। उस पर आई हुई आपत्तियों को देख कर स्वयं खुशी ही नहीं होते किन्तु उसे स्वयं आपत्ति में डालने में भी कोई उपाय बाकी नहीं रखते। कोई उन्हें अस्पृश्य समझता है, कोई उन्हें समाज से बहिष्कृत करता है, कइ एक तो ऐसे हैं जिनके हाथ में सत्ता नहीं है, नहीं तो उन्हें जीवन दण्ड देने को भी तैयार हैं। इस प्रकार की मनोवृत्ति ही वास्तविक अधार्मिकता की परिचायक है; क्योंकि, ये धर्मात्माओं के लक्षण नहीं हैं।

धर्मात्माओं की दृष्टि में, क्रोध, हिंसा, और घृणा का पात्र कोई नहीं है। उनकी दृष्टि में सभी क्षमा, दया और प्रेम के पात्र हैं। संसार में आजतक जितनी बार, इस भूमि का पवित्र कलेवर मानव जाति के अमूल्य रक्त से रंजित इन धर्म ध्वजियों द्वारा हुआ है, उतना भूमन्डल के इतिहास में राज्य लिप्सा से कहीं नहीं हुआ है। इस प्रकार का कार्य्य धर्म नहीं है, प्रत्युतः सरासर अधर्म है। इसीलिये इसका फल दुःख और पतन होता है। शास्त्रों में धर्म का लक्षण इस प्रकार किया है।

"यतो अभ्युदय निश्रेयस सिद्धिः स धर्मः"

अर्थात्- जिससे निश्चय करके अभ्युदय और कल्याण की सिद्धि होती है, उसको धर्म कहते हैं।

जिन मनोभावों द्वारा हमारे अन्दर, पारस्परिक फूट, अनैकता, घृणा पैदा की जाती है, उनको हम धर्म नहीं कह सकते, क्योंकि उनसे निश्चय करके पतन होता है, पतन का हेतु धर्म कभी नहीं हो सकता। इसलिये हमको उन्नति के लिये, सच्चे धर्म की खोज करनी होगी। बिना सच्चे धर्म के न किसी का उन्नति हुई है, न होने की सम्भावना ही है, यद्यपि धर्म का तत्व अत्यन्त ही गहन है। इसीलिये व्यास जी ने कहा है।

"धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां"

अर्थात्- धर्म का तत्व गुहा में छिपा हुआ है। और भी-

"धर्मश्च सूक्ष्मो निपुणोपलक्ष्यः"

अर्थात्- धर्म अति सूक्ष्म है और वह धर्मात्मा पुरुषों द्वारा ही जाना जाता है। इत्यादि वाक्यों से धर्म की पहिचान अत्यन्त सूक्ष्म प्रतीत होती है। तथापि

'सतामबुद्धि प्रसादेन पश्चेत् सर्वं यथा तथम्"

अर्थात्- साधारण मनुष्य, सज्जनों की बुद्धि रूपी दिये से सब वस्तु को यथार्थ रूप से देखे। इस नीति के अनुसार यदि हम भी उसकी

खोज करें, तो अवश्य कुछ न कुछ पता पा सकते हैं। इसलिये हमारे प्रेमी पाठको! आइये हम एक बार आपका ध्यान मनुस्मृति के छठी अध्याय के ९२ वें श्लोक की तरफ खींचते हुये, इस लेख को यहीं स्थगित करते हैं। वह श्लोक यह है:-

धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।

अर्थात्- धृति, माने संतोष। और क्षमा माने दूसरे द्वारा अपकार किया जाने पर भी बदले का अपकार न करना। और दम माने विकार के कारण विषय के निकट होने पर भी मन का नहीं बिगड़ना। और अस्तेय माने अन्याय से पराये धन का न लेना। और शौच माने मट्टी तथा जल से देह का शुद्ध करना और सद्भावनाओं द्वारा मन को शुद्ध करना (मानसिक शौच) और इन्द्रिय, निग्रह माने विषयों से चक्षु आदि का रोकना। और धी माने शास्त्र आदि के तत्व का ज्ञान। और विद्या माने आत्मज्ञान और सत्य माने यथार्थ कहना। अक्रोध माने क्रोध का कारण होने पर भी क्रोधित न होना। यह दस प्रकार का, धर्मका स्वरूप है।

हम उन सच्चे धर्म के अनुरागियों से प्रार्थना करते हैं, कि एक बार आप इस मनु के दस विध धर्म को, केवल श्रद्धा से ही नहीं परन्तु विज्ञान तर्क और व्यवहारिक वाद की कसौटी पर अच्छी तरह कस लीजिये और फिर उसका आचरण कीजिये। फिर देखिये संसार की समस्त समृद्धियाँ, भौतिक जगत् की चकमकाहट, शारीरिक और मानसिक स्वस्थता का अपूर्व आनन्द अपने आप आकर न उपस्थित हो जाय तो मजाल क्या है।

व्यर्थ की अगर मगर में फंस कर, यह धर्म अच्छा है, वह बुरा है, इस प्रकार की असत्, समालोचनाओं के करने से, न कोई स्वयं धर्मात्मा बन ही सकता है और न धर्माचरण के मीठे फल को स्वयं चख सकता है।

क्यों नहीं ?

[ले० श्री मदनगोपाल जी 'सिंहल']

गिरि तें गिराया भरे सिन्धु में डुबाया पर-
बाल नहीं बाँका प्रह्लाद रटने से राम;
विष पिलवाया काला नाग भिजवाया पर-
मीरां को न रोक पाया राणा भजने से श्याम।
लाख दुःख सहे पर त्यागे नहीं प्रभु नाम-
ऐसे नर भये, मति तेरी गई किमि वाम;
विष न पिलाये कोई सूली न चढ़ाये तोहे-
फेर क्यों न मूरख तू भजत हरि का नाम॥

रामायण में नाम महिमा

[ले० श्री तुलसीदास जी]

वन्दौं रामनाम रघुवर को, हेतु कृशानु भानु हिमकर को।
विधि हरि हरमय वेद प्राण सो, अगुण अनूपम गुणनिधान सो॥

श्री रघुकुल में श्रेष्ठ ऐसे राम के नाम की वन्दना करता हूँ कि जो अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा इनका हेतु है। फिर राम नाम वैसा है कि ब्रह्मा-

विष्णु और महादेव के एक रूप हो रहा है अर्थात् रकार ब्रह्मा अकार विष्णु और मकार महादेवमय है और वेद का प्राण है क्योंकि वेदका मूल जो ओंकार है वह रामनाम से ही निकला है एवं निर्गुण, उपमारहित तथा गुण का निधान है।

महामन्त्र जोई जपत महेसू, काशीमुक्ति हेतु-उपदेसू।
महिमा जासु जान गणराऊ, प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥

जिस महामन्त्र रामनाम को शिवजी जपते हैं और रामनाम का उपदेश ही काशी में मुक्ति का कारण है। जिस रामनाम की महिमा गणेशजी जानते हैं कि इस रामनाम के प्रताप से उनकी प्रथम पूजा होती है।

जान आदि कवि नाम प्रतापू, भयउ सिद्ध करि उलटा जापू।
सहसनाम सम सुनि शिव बानी, जपि जेई पिय संग भवानी॥

नाम के प्रभाव को आदि कवि वाल्मीकिजी भी जानते हैं कि, जिस रामनाम का उलटा जप अर्थात् मरा मरा करते करते सिद्ध हो गये यह राम नाम सहस्र नामके समान है शिवजी की ऐसी वाणी सुनकर और राम इस मंत्रका जपकर पार्वती शिवजी के साथ भोजन करने को बैठ गई।

हरषे हेतु हेरि हरहीको, किय भूषन तिय भूषन टीको।
नाम प्रभाउ जान शिव नीके, कालकूट फल दीन्ह अमीके॥

शिवजी पार्वती के हृदय की प्रीति को देख कर प्रसन्न हुए और उनको ब्रह्माँड की सब स्त्रियों की शिरोमणि करके अपने अंगकी भूषण अर्थात् अर्धांगिनी बना ली। राम नाम का प्रभाव शिवजी ही अच्छे प्रकार से जानते हैं जिसके प्रभाव से विषने उन्हें अमृत का फल दिया।

बरषा ऋतु रघुपति भगति, तुलसी शालिसुदास।
रामनाम बर बरण दुग, श्रावण भादौ मास॥

श्री रघुनाथ जी की भक्ति वर्षा ऋतु है और परम भक्त तुलसीदास धान है, तथा राम नाम यह सुन्दर दो अक्षर श्रावण और भाद्र मास हैं।

अक्षर मधुर मनोहर दोऊ, बरण बिलोचन जन जिय जोऊ।
सुमिरत सुलभ सुखद सब-काहू, लोक लाहु परलोक निबाहू॥

रामनाम में रकार और मकार दोनों अक्षर मधुर और मनोहर हैं वे वर्णों के नेत्र हैं, अर्थात् सब अक्षरों के ऊपर रहते हैं और भक्तजनों के हृदय के नेत्र हैं। स्मरण करने में सुलभ हैं और सुख के देने वाले हैं तथा संसार में लाभ एवम् परलोक में निर्वाह करते हैं अर्थात् मोक्ष के देने वाले हैं।

कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके।
राम लषण सम प्रिय तुलसी के॥
बरणत बरण प्रीति बिलगाती।
ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती॥

कहने सुनने और स्मरण करने में यह दोनों अक्षर बड़े सुन्दर हैं तथा मुझ तुलसीदास को तो राम-लक्ष्मण के समान प्यारे हैं। दोनों अक्षर वर्णन करने में प्रीति अलग नहीं होती है क्योंकि वह ब्रह्म जीव के समान स्वभाव ही से मिली हुई है।

नर नारायण सरिस सुभ्राता, जगपालक विशेषि जनत्राता।
भक्ति सुतिय कल करण विभूषण, जगहित हेतु विमल विधु पूषण

ये दोनों अक्षर नर नारायण के समान सुन्दर भाई हैं, संसार के पालक और विशेष करके

मनुष्यों के रक्षक हैं। भक्ति रूपी सुन्दर कामिनी के कर्णों के भूषण हैं। और संसार के हित के लिये निर्मल चन्द्रमा और सूर्य के समान हैं।

स्वादु तोषसम सुगति सुधाके, कमठ शेषसम धर वसुधाके।
जनमन मंजु कंज मधुकरसे, जीह जसोमति हरि हलधरसे॥

पुनि ये दोनों अक्षर सुन्दर मुक्तिरूप अमृत के स्वाद और उससे तृप्ति हो जाने के समान हैं क्योंकि रकार ब्रह्म रूप होने से ब्रह्मरूप के समान निराधार है और मकार जीव रूप है, अतएव जैसे जीवका आधार ब्रह्म है वैसे ही शेषनाग का आधार कच्छप है इसलिये इन दोनों के समान ब्रह्म और जीवरूप रकार मकार पृथिवी को धारण किये हैं। सन्त जनों के मनरूपी सुन्दर कमल के लिये (दोनों अक्षर) भ्रमर हैं अर्थात् जैसे कमल पर से भ्रमर नहीं हटता वैसे ही ये दो अक्षर भी सन्तजनों के चित्त में रहते हैं और जिह्वारूपी यशोदा को श्रीकृष्ण और बलराम के समान प्रिय हैं।

एक छत्र एक मुकुटमणि, सब वरणन पर जोऊ॥
तुलसी रघुवर नामके, वरण विराजित दोऊ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि देखो रघुनाथ जी के नाम दो अक्षरों में से रकार (जल तुम्बिका न्याय से अर्थात् जलके ऊपर तोंबा तैरता है) छत्र (८) समान सब अक्षरों के शिर पर और मकार 'मोनुस्वारः' इस सूत्र से दिव्य मुकुट मणि के समान सब वर्णों पर विराजमान है।

समुझत सरस नाम अरु नामी, प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी॥
नाम रूप दोऊ ईश उपाधी, अकथ अनादि सु सामुझि साधी

समझने में नाम और नामी कहिये स्व रूप ये समान हैं और इनकी प्रीति ऐसी है जैसे प्रभु को सेवक पर और सेवक की स्वामी पर। नाम और रूप दोनों ईश्वर की उपाधि अर्थात् माया है. क्योंकि जब तक माया का ग्रहण न होगा तब तक नाम और रूप कुछ नहीं है, और जब ईश्वर माया को ग्रहण करता है तब संसार में नाम और रूपमय हो जाता है। यद्यपि नाम कहने में नहीं आता है और रूपका आदि नहीं मिलता, परन्तु केवल जगत के नाम और रूप को कहते हैं और ईश्वर का नाम और रूप नित्य है।

दूसरा अर्थ यह है-नाम और रूप अर्थात् समर्थ हैं और उपाधि कहिये समीप रहने वाले हैं, तहां नाम अकथ है और रूप अनादि है और श्रेष्ठ बुद्धि से जाने जाते हैं।

को बड़ छोट कहत अपराधू, सुनि गुण भेद समुझि हैं साधू।
देखिये रूप नाम आधीना, रूपज्ञान नहिं नाम विहीना॥

नाम और रूप में कौन छोटा है कौन बड़ा है ऐसा कहने से अपराध होता है, इसलिये साधु लोग गुणों का भेद सुन कर आप समझ लेंगे। रूप नाम के आधीन है ऐसा देखा जाता है क्योंकि रूप का ज्ञान बिना नाम के नहीं होता।

रूप विशेष नाम बिनु जाने, करत जगत न परहिं पहिचाने।
सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे, आवत हृदय सनेह विशेषे॥

बिना नाम के जाने हथेली पर धरा हुआ पदार्थ नहीं पहिचान पड़ता है। रूप के बिना देखे भी नाम के स्मरण करने से हृदय में स्नेह अधिक हो जाता है।

नाम रूप गति अकथ कहानी।
समुझत सुखद न परति बखानी॥

अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी ।
उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी ॥

नाम और रूप की कथा कही नहीं जा सकती समझने में सुख को देने वाली है पर उस सुखका बखान नहीं हो सकता है। निर्गुण और सगुण इन दोनों के बीच में नाम ही एक सच्चा साक्षी है, क्योंकि दोनों को समझाने वाला और चतुर दुभाषिया अर्थात् दोनों ओर की कहने वाला है जैसे राम शब्द रमने वाले और रमाने वाले दोनों का अर्थवाची है तहाँ रमनेवाला निर्गुण और रमानेवाला सगुण है।

राम नाम मणिदीप धरु, जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहरौ, जो चाहसि उजियार ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जो तू बाहर और भीतर उजियाला चाहता है तो राम नाम रूपी मणि दीपक को जीभ रूपी देहली के द्वार पर धर।

नाम जीह जपि जागहिं योगी,
बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी।
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा,
अकथ अनामय नाम न रूपा ॥

योगी नाम जीभ से जपकर संसार को वैराग्य से त्यागकर मोहरूपी रात में जागने से वे उस ब्रह्मानन्द सुख का अनुभव करते हैं कि जो उपमारहित, अकथनीय, रोग रहित है और जिसका नाम और रूप नहीं है।

जाना चहहिं गूढ़गति जेऊ, नाम जीह जपि जानहिं तेऊ ॥
साधक नाम जपहिं लयलाये, होहिं सिद्ध अणिमादिक पाये ॥

जो गूढ़ गति को जानना चाहते हैं तो वे नाम को जीभ से जप कर जानते हैं जैसे प्रहाद आदि। जो साधक नामको मन लगाकर जपते हैं वे अणिमादि आठ सिद्धियां पाकर सिद्ध हो जाते हैं (ये अर्थार्थी भक्त हुए जैसे सुग्रीव विभीषण आदि)।

जपहि नाम जन आरत भारी, मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी।
रामभक्त जग चारि प्रकारा, सुकृती चारिउ अघ उदारा ॥

महा दुखी मनुष्य जो नामको जपते हैं उनके संकट मिट जाते हैं और वे सुखी होते हैं (ये आरत भक्त गज, द्रौपदी आदि हुए) संसार में रामजी के भक्त चार प्रकार के हैं (अर्थात् १ जिज्ञासु, २ अर्थार्थी, ३ आरत, ४ ज्ञानी) और वे चारों पुण्यात्मा, पापहीन और उदार हैं।

चहुं चतुरन कहं नाम अधारा ।
ज्ञानी प्रभुहि बिशेष पियारा ॥
चहुं युग चहुं श्रुति नाम प्रभाऊ ।
कलि बिशेष नहिं आन उपाऊ ॥

चारों चतुर जनोंको नाम का अधार है इनमें प्रभु रघुनाथ जी को ज्ञानी विशेष प्यारा है। चारों युग और चारों वेद में नाम का प्रभाव है, किन्तु कलियुग में विशेष करके नामको छोड़ अन्य उपाय नहीं है।

सकल कामना हीन जे, राम भक्ति रस लीन ॥
नाम सप्रेम पियूष ह्रद, तिनहु किये मन मीन ॥

जो सब कामनाओं से (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) आदि हीन हैं और राम भक्ति के रसमें लीन है, उन्होंने भी राम नामरूपी सुन्दर प्रेम के अमृत कुण्ड में अपने मनको मछली बनाया है।

———

अवतार जीवन में साधक भाव और श्रीराम-कृष्ण

[ले० श्री स्वामी मेधेश्वरानन्द जी]

गतांक से आगे।

अब यह भी विचारना चाहिये कि अवतारी पुरुषों के साधक जीवन का इतिहास पूरा क्यों नहीं रक्खा गया। इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला कारण यह है कि भक्त अपने उपास्य भगवान् को पूर्ण देखना चाहते हैं अवतारी पुरुष के देव चरित्र को देख कर वे उनके दैवत्व में इतना विश्वासी होगये थे कि षड्ऐश्वर्यशाली भगवान् को सिवाय और किसी तरह से भी उनका चिन्तन नहीं कर सकते। उनके असाधारण योगैश्वर्य को देख कर उन्होंने यह सोचा कि इतने बड़े चरित्र में मानवीय भाव आराम करने से हम कहीं पातक भोगी हो जायें इसीलिये इन्होंने इनके मनुष्य भावों को जितना होसके छिपा के उनके चरित्र में केवल देव भावों का ही समावेश कर दिया और जहां २ मनुष्य भावों को छिपा नहीं सका वहाँ यह उनकी लीला है ये सब हमें दिखाने के लिये है ऐसे प्रभु अपने भक्तों से छलना करते हैं इत्यादि वाक्यों से उनके मनुष्य भावों को छिपाने का प्रयत्न किया। और इसी प्रकार से नाना प्रकार की अलौकिक कहानियाँ की अवतारणा करके अवतार चरित्र हमारे पास दुर्बोध्य ही बना रक्खा है। भक्तों की भक्ति के आनिश्यध्य का कारण ही अवतारी पुरुषों का मनुष्य भाव नहीं दिखाया गया। परन्तु इस तरह का भाव भक्ति की कच्ची अवस्था में ही होता है। भक्ति की परिपक्वावस्था में ऐसा नहीं होता। भक्ति की पक्वावस्था में भक्त भगवान् में ऐश्वर्य देखना नहीं चाहते।

प्रकृत भक्त प्रेम से श्री भगवान् को इतना अपना लेते हैं कि उनमें ऐश्वर्य का लवलेश भी नहीं सह सकता श्रीकृष्ण की जननी यशोमती ने शैशवावस्था से ही भगवान् श्रीकृष्ण में असाधारण शक्ति का प्रकाश देखने पर भी अपने प्यारे लालके सिवाय और किसी भाव भी उनमें आरोप नहीं कर सकीं श्री वृन्दावन छोड़कर भगवान् मथुरा में गये और अपने बाहुबल से तुरन्त कंस को मार डाला! इसके बाद श्री भगवान् के यश सौरभ से तत्कालीन भारतवर्ष भरगया परन्तु यह सब जानते हुए भी श्रीमती यशोदादेवी मेरा गोपाल भूखा है। धूप में उसका चेहरा सूख गया है। अब ये गोठ में लौट कर मेरे हाथ से खीर नवी खायगा इत्यादि सोचती हुई अपने भाव में मस्त रहकर नित्य प्रति दिन बिताती थी। व्रज बालकों ने भी भगवान् श्रीकृष्ण के भोगैश्वर्य को सर्वदा देखने पर भी उनको अपने प्राण कान्हाई के सिवाय और किसी दृष्टि से भी देख नहीं सके। व्रज गोपियों ने भी श्रीकृष्ण को षड्ऐश्वर्यशाली भगवान जान कर कान्त भाव से ही उनकी भजना की भक्ति की परिणत अवस्था में ही भक्त, वात्सल्य, सख्य और मधुर-भाव रूपी परम धन से धनी हो सकते हैं। और माता यशोमती व्रज बालके एवं व्रजगोपिकायें हमेशा के लिये

वात्सल्य सख्य और मधुर भावों से भावित भक्तों का आदर्श बन रहेंगी। इनके चरित्र के विश्लेषण करने से हमें यही मालूम होता है कि ये सब भगवान् श्रीकृष्ण के ऐश्वर्यों को बिलकुल पसन्द नहीं करतीं थीं। श्री भगवान् भी निरैश्वर्य होकर बालक जैसे अपनी परछाई के साथ खेल करता है वैसे ही अपने भक्तों के साथ लीला विलास करके आनन्द उठाते हैं अतः अवतार चरित्र में मनुष्य भाव का आरोप करने से जिन भक्तों की भक्ति की हानि होती है अथवा वैसा करने में जिनके चित्त में शंका होती है। उनकी भक्ति कच्ची है और उनकी लेखनी से अवतार चरित्र रचित होने के कारण वे हमारे पास इतने जटिल मालूम होते हैं। अवतार चरित्र में मनुष्य भाव का नक्शा न खींचने का दूसरा कारण यह है कि पूर्वोक्त भक्तों ने अवतार चरित्र रचते समय यों भी सोचा कि, भगवान् ही स्वयं जीव कल्याणार्थ मनुष्य के रूप में अवतीर्ण होते हैं। अतः उनके देव भाव से साधारण मनुष्यों का जितना कल्याण हो सकते हैं उतना उनके मनुष्य भाव से नहीं हो सकता बल्कि देव चरित्र में मनुष्य भाव का आक्षेप करने से भक्ति की हानि ही हो सकती है। इसी लिये अवतार चरित्र के जिस अंश में मनुष्य भाव का ज़ियादह प्रकाश होता है उसी साधन कालीन अंश को छिपाकर उनके देव चरित्रों के ही खींचने की प्रचेष्टा हुई थी। परन्तु भक्ति की हानि उसकी कच्ची अवस्था में ही हो सकती है। और अवतार चरित्र के साधक भाव से हम किस तरह से अधिकतर उपकृत हो सकते हैं इसकी समालोचना की गई है। यहां उसका पुनरुल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं हैं। अतः हम सब तरह से विचार करके देखते हैं कि अवतार चरित्र के मनुष्य भावों को छिपाकर उनकी जीवनी लिखना बड़ी भारी गलती है।

अब साधन क्या है यह भी विचारना चाहिये। यद्यपि हमारी इस पूर्व जन्म भूमि में साधक और भांति भांति की साधन प्रणालियों का अभाव नहीं हुआ, यद्यपि वैदिक ऋषियों से लेकर अभीतक हज़ारों भक्त ज्ञानी महापुरुष किसी न किसी प्रकार के साधन में लगे ही रहे हैं, यद्यपि आध्यात्मिक राज्य के एक छत्र सम्राट अवतारी पुरुषों का आविर्भाव इसी देश में ही सब से ज़ियादह हुआ है, यद्यपि आध्यात्मिक राज्य का सर्व श्रेष्ठ तत्व अद्वैत वेदान्त की उपलब्धि हमारे वैदिक ऋषियों ने ही किया है और उसका प्रचार हमारे देश ही से हुआ है यद्यपि आध्यात्मिक सम्पद् के कारण जगत का शीर्षस्थान अधिकार किया है और भविष्य में भी वैसा ही करेगा तथापि काल के अद्भुत प्रभाव से वर्तमान युग में साधन तत्व हमारे पास एक पहेलिका सी ही बन गयी है। वर्तमान युग में हम उद्देश्य को भूल कर के बलमात्र शारीरिक कठोरता, दुष्प्राप्य वस्तुओं का संयोग, किसी विशेष स्थान में विशेष क्रियाओं का अर्थहीन अनुष्ठान सांस वायु का निरोध या असम्बद्ध मन का विसदृश चेष्टा ही में साधन की परिसमाप्ति समझ कर उसी में अपने तमाम उद्यम और पुरुषार्थों को खो बैठते हैं। अतः साधन विषय में कुछ आलोचना अप्रासंगिक नहीं होगा। एक अखण्ड, समरस ब्रह्म ही विद्यमान है। जीव और जगत उसी ब्रह्म में कल्पित हैं। जीव और जगत्

की परमार्थिक सत्वा नहीं है। औपचारिक या व्यवहारिक भाव में ही जीव और जगत् की विद्यमानता है। मनुष्य, जानवर, वृक्ष लता, काष्ठ, मिट्टी इत्यादि सभी व्यक्ति और वस्तु में वही ब्रह्म ओतः प्रोत भाव से परिव्याप्त है अतः हम सर्वदा उन्हीं ब्रह्म को ही देखते हैं सुनते हैं, सूंघते हैं, चखते हैं छूते हैं सब तरह से उन्हीं के साथ ही हमारे नित्य प्रतिदिन का व्यवहार चलता है परन्तु तो भी उन्हें हम जान नहीं सकते, हम यह नहीं जान सकते कि यह जगत वास्तव में नहीं है और एक नाम रूप विहीन अखंड समस्त सच्चिदानन्द ब्रह्म ही विद्यमान है। यह न जानने का कारण यह है कि किसी एक अनादि काल में हमने अपनी सत्वा परब्रह्म से मानो व्युत्थित होकर इसी माया मरीचिकामयी प्रकृति के फन्द में फंस कर इस विचित्रतापूर्ण जगत् को ही सत्य समझा और अपनी पारमार्थिक सत्वा को भूल गये। और जब तक अपनी स्वरूपावस्था को पाकर उससे इस भूत जगत् की तुलना करके कौन व्यवहारिक और परमार्थिक है यह नहीं जान सकें तब तक भ्रम में ही रह जावेंगे और जन्म मृत्यु सुख दुखादि द्वन्द्व के चक्कर में घूमते रहेंगे। अब यह भ्रम कैसा हुआ और कब हुआ ? भ्रम का सर्वत्र एक ही कारण होता है और वह कारण अज्ञान है। और कब भ्रम उत्पन्न हुआ यह भी जानना सम्भव नहीं है। कारण यह है कि नाम रूप और देश और काल इन्हीं की विचित्रता को जगत कहते हैं। अतः काल रूप समय का ज्ञान, जगत् ज्ञान के भीतर या उसके साथ ही साथ उसके अंशांगी रूप में विद्यमान है। इसी लिये शास्त्रकारों ने सृष्टि को अनादि बताया है। अतः यह जानना सम्भव नहीं है कि हम कब से भ्रम में पड़े हैं। परन्तु भ्रम के परे होने का उपाय है। भ्रम से छुटकारा पाकर अपनी स्वरूपावस्था की पुनः प्राप्ति का रास्ता ऋषि लोगों ने हमें बताया है।

परन्तु इसमें एक बात और है। हम अधिक संख्याओं का ज्ञान भूल ज्ञान है और अल्प संख्यक ऋषियों का ज्ञान ठीक है यह किस तरह से माना जाय ? इसका जवाब यह है कि अधिक संख्यक का ज्ञान ठीक ज्ञान है। यह कौन बोल सकते हैं। तड़ित शक्ति के विषय में अधिक संख्यक लोग कुछ नहीं जानते। अतः क्या हम यह स्वीकार करेंगे कि तड़ित शक्ति कुछ भी नहीं है ! ऋषि लोगों ने ब्रह्म ज्ञान से अपने स्वरूपावस्था में प्रतिष्ठित होकर जन्म मृत्यु के परे पहुंचे थे और उससे उनको परा शान्ति लाभ हुई थी। यह उनके चरित्र का असाधारण धैर्य, सहन शीलता, निर्भीकता सत्यप्रियता, सर्व भूत में समदृष्टि, औदार्य, करुणा, प्रेम और अहं एवं ममत्व का ज्ञान न रहने से स्पष्टतया प्रतीत होता है। ऋषिलोग जो ज्ञान से स्वरूप में प्रतिष्ठित हुये थे वही ज्ञान लाभ किस तरह से किया जाय यही उन्होंने हमें बतलाया है अतः उनके बताये हुये रास्ते से चलने से हम भी अपनी स्वरूपावस्था को फिर पाकर आनन्द का अधिकारी बन सकेंगे।

यहां और एक शंका आती है। वह यह है कि हम सभी एक ही प्रकार के भ्रम में कैसे पड़े हैं। हर एक मनुष्य ही मनुष्य को मनुष्य कहते हैं पशु को पशु ही कहते हैं। यह कैसे हो सकता है ? पहिले यह शंका नहीं हो सकती कारण यह है कि

हमने ऋषिलोगों को हमसे अलग छोड़ कर ही ऐसी शंका की है। हम जिस दृष्टि से जगत् को देखते हैं तत्वज्ञ ऋषिलोग वैसा नहीं देखते उनकी दृष्टि में सभी ब्रह्म हैं। दूसरी बात यह है कि एक विराट मन में जगत् रूप कल्पना उत्पन्न हुई है। हमारे व्यष्टि मन उसी समष्टि मन का अंश है। समष्टि मन में जिस प्रकार की कल्पना होती है व्यष्टि मन में भी अनुरूप कल्पना ही होती है। अतः हम सभी जगत् को एक ही प्रकार देखते हैं। इसलिये यदि हमारे बीच में से कोई तत्वज्ञ होकर जगच्चक्र के बाहर भी चले जायें तो भी बाकी सब भ्रम में ही रह जाते हैं। अतः जिस प्रणाली से जीव इस जगच्चक्र के पेर पहुंच कर आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होता है उसे साधन और जिस नर नारी में उस प्रणाली के अनुसार साधन का प्रकाश देख पड़ता है उन्हें साधक कहते हैं।

साधन के दो खास मार्ग हैं। एक नेति का और दूसरा 'इति' 'इति' का पहले मार्ग इहामुत्रफल भोग विरागी, विचारपरायण सन्यासियों के लिये है। इस मार्ग के साधक पहिले से ही जगत् और इसके भीतर के तमाम व्यक्ति और वस्तु को अस्वीकार करके एक ब्रह्म सत्य को ही स्वीकार करते हैं अथवा शरीर, मन, बुद्धि चित्त अहंकादि के साथ ऐहिक और पारत्रिक आयत मनोरम भोग्य वस्तुओं को नश्वर जान कर नेति अर्थात् ये सब सत्य नहीं हैं ऐसा विचारते हुये एक अखंड परब्रह्म के ध्यान में मस्त हो जाते हैं। धीरे धीरे विचार बुद्धि से जब उनका मन वासना और तज्जनित संस्कारों से हीन होता है - निर्विकल्प समाधि होते ही उनके हृदय पर से अज्ञान का पर्दा चला जाता है, ज्ञानात्मोक में उनका चित्त उद्भासित हो जाता है उनके पास परम तत्व प्रतिभान होजाता है। इसके पश्चात् जीव का प्रासन्य कुछ भी नहीं रहजाता।

ब्रह्म विद् ब्रह्म ही बन जाते हैं। 'इति' मार्ग के साधक इस जगत् को सृष्टि स्थिति और नाश करने वाले एक सगुसा ईश्वर को स्वीकार करते हैं और उनके बनाये हुये इस जगत को भी अस्वीकार नहीं करते। परन्तु इस जगत के क्षण स्थायी भोग्य वस्तुओं के भोग पे लिप्त न होकर साक्षात् ईश्वर का दर्शन और उनसे ही लीला बिलास करना चाहते हैं। वे ईश्वर के किसी एक रूप को अपने इष्ट मान कर उनसे पिता माता इष्ट बन्धु या पति ऐसा किसी सम्बन्ध से सम्बद्ध होकर उन्ही के ध्यान और सेवा पूजा में मग्न रहते हैं। धीरे धीरे उनकी इष्ट चिन्ता जब गाढ़ी होती है तब वे यह जगत भूल जाते हैं और उपासक वे स्वयम् और उपास्य इष्ट के सिवाय उनके बीच में और कुछ भी नहीं रहजाता। उनकी इस अवस्था को सविकल्प समाधि कहते हैं। इस अवस्था में सारा जगत भाव मय हो जाता है और वे भाव में अपने इष्ट से लीला विलास करते हुये विमल आनन्द उठाते हैं। धीरे धीरे उनका चित्त इष्ट ही में लय होजाता है और उनके पास इष्ट के सिवाय कुछ भी नहीं रह जाता है। इस तरह से द्वैत भाव से उपासना शुरू करके वे भी अन्त में निर्विकल्प अद्वैत ज्ञान में ही प्रतिष्ठित हो जाते हैं। यही है जीव का चरमलक्ष्य नातः परमस्ति।

हमारे देश में बहुत सिद्ध महात्मा और अवतारी पुरुष अवतीर्ण होकर साधन द्वारा इसी

परम तत्व को लाभ करके हमें भी रास्ता बतला गये हैं। अवतारी पुरुष का जीवन ही हमारे लिये प्रधान आदर्श स्थल है कारण वे हरएक नवयुवक के प्रारम्भ में नये ढंग पर धर्म को चलाने के लिये ही अवतीर्ण होते हैं। और जिस युग में वे अवतीर्ण होते हैं उसी युग के मनुष्यों के आध्यात्मिक जीवन का पूर्ण आदर्श उनमें देख पड़ता है इसलिये मनुष्य मात्र ही उनके देवत्व में विश्वास करते हैं। परन्तु इस युग के मनुष्य श्री कृष्णादि प्रथित नामा अवतीर्ण पुरुषों को भी मनुष्य रूप में ही देखना चाहते हैं। जड़वादी पाश्चात्य शिक्षा में शिक्षित मनुष्य ज़ियादा तरह नास्तिक और संशयात्मा ही होते हैं। परन्तु जो भगवान् के अस्तित्व में विश्वासी हैं उनमें से बहुत कम ही मनुष्य भगवान् के मनुष्य बनकर अवतीर्ण होने में विश्वास करते हैं। परन्तु यदि अवतारी पुरुष का पूर्ण चरित्र का नकशा खींचा जाय तो पूर्ण मनुष्यत्व के साथ ही साथ पूर्ण देवत्व का अपूर्व समावेश एक ही व्यक्ति में देख कर कोई भी मनुष्य उनपर श्रद्धावान् न होकर रह सकेंगे। पूर्व अवतारी पुरुष के मानव चरित्र का इतिहास अब मिलना सम्भव नहीं है। परन्तु इस नवयुग के सन्धिस्थल में एक विशाल आत्मा अनन्त आध्यात्मिक सम्पद लेकर अवतीर्ण हो गये हैं। वे हैं दक्षिणेश्वर की काली माता के प्यारे लाल भगवान् श्री रामकृष्ण देव। जिनके चरित्र में मनुष्यत्व के परिपूर्णता के साथ अपूर्व देवत्व का समावेश देखकर पण्डित प्रवर मोक्ष मूलर) रोम्यां रोलयां आदिपाश्चात्य मनीषी भी स्तम्भित होकर उनकी जीवनी देख कर धन्य हो गये हैं। इनके साधक जीवन का पूरा पूरा इतिहास हमारे पास मौजूद है। हम सब पहिले उसी अंश की थोड़ी बहुत आलोचना करके यही दिखाना चाहते हैं कि आस्तिक मात्र ही के पास वह कैसा फल प्रद है। साधक जीवन का तो वह परम सम्पद है अतः आगे बढ़कर हम श्री रामकृष्ण के साधक जीवन के विशेष विशेष अंश की आलोचना करेंगे।

गोरक्षा

१० वां अंक से आगे।

ले० श्री दामोदरसहायसिंह जी बी. ए. एल. टी. कविकिंकर

१२

करते वे उत्पन्न घास उपयुक्त पुष्टि कर।
देते चारा अन्न धेनुओं को भोजन भर॥
पक्के सुन्दर स्वच्छ भवन में उन्हें बधाते।
भली भांति से जहां प्रकाश पवन हैं जाते॥
मच्छड़ पिस्सू दुर्गन्ध का, पता वहां पाते नहीं।
है मन प्रसन्न होता बहुत, गोगृह में जाते जहीं॥

१३

भोजन गृह है अलग, शयन गृह अलग बना है।
जहां घास का मृदुल बिछावन बिछा हुआ है॥
होती दोहन क्रिया अलग शुचि स्वच्छ भवन में।
रहने पाता नहीं मैल कुछ भी गोतन में॥
वो गोपालन विधि में चतुर, ग्वाले रखते गाय हैं।
उनको सुख देने के लिये, करते विविध उपाय हैं॥

१४

जो योरप के चतुर विज्ञ सुविचार शील जन ।
गोपालन शिक्षा प्रचार मे देते तन मन ॥
लाखों और करोड़ों अपने द्रव्य लगाते ।
औ वे इस उत्तम व्यय का मीठा फल पाते ॥
उनकी गलती चांदी सदा, सब विधि से सम्पन्न हो ।
क्या गो सेवक संसार में सहता दुःख अवसन्न हो ?

१५

कृषि प्रधान यह देश प्राण गो गण से पाता ।
पर गोकुल का कष्ट हाय ! कुछ कहा न जाता ॥
गोशाला में जहां लखो, दुर्गन्ध सदा है ।
मशक दंश से गो-माता अति व्यग्र सदा है ॥
आती न वायु नहिं रौशनी, नहीं बैठने की जगह ।
दम घुटता है रहते वहां, मानो कोई नरक वह ॥

१६

भोजन भूसा घास नहीं भर पेट खिलाते ।
पानी तक भी साफ़ समय पर नहीं पिलाते ॥
जब तक रही दुधार दूहते रहे बराबर ।
जब बिसुकी तो दिया बेंच थोड़े दामो पर ॥
देते कसाइयों को इसी हिन्दू नित गौ धेनुधन ।
तुर्कों से झगड़ा व्यर्थ है, निज मनमें समझो सुजन ॥

१७

गोकुल का ही नाश हमें कमज़ोर बनाता ।
दूध नहीं जनता को है नहिं मिलने पाता ॥
दूध न पाते बच्चे तक दुख मुंह हमारे ।
इसी हेतु से काल कवल हो जाते प्यारे ॥
बहती रहती घी रात दिन, गोरस की नदियां जहां ।
गोवंश अनादर हेतु से, दुर्गति है ऐसी यहाँ ॥

१८

जो समर्थ स्वच्छन्द बड़े बड़े गोरक्षा में है ।
बड़े खेद की बात ध्यान नहिं देते वे हैं ॥
वे चाहें तो गोहत्या तक रुक सकती है ।
साधारण जनता सुधार पर झुक सकती है ॥
पर जूं तक नहीं रेंगती, उनके कानों पर कभी ।
यदि कृपा करें तो आज ही गो-दुख टल सकता अभी ॥

१९

अब भी चेतो आर्य वैश्य कुल की सन्तानो ।
गो पालन प्रधान कर्त्तव्यों में निज जानो ॥
गोधन की सम्भाल करो धन आप जुटेगा ।
सुख सम्पत पाओगे दुख दारिद्र्य छुटेगा ॥
वर गोपाल साहित्य का, अन्ध कार अज्ञानहर ।
विज्ञान प्रचार करो सदा, हे भारत के मनुज वर ॥

२०

दान वीर धनियों का यहां नहीं टोटा है ।
पर अपना ही भाग्य समझ पड़ता खोटा है ॥
सस्ता गोसाहित्य प्रचार अगर हो पावे ।
तो सम्भव है गोकुल का दुख कम हो जावे ॥
है कमी समझ की ही यहां, कमी न धन की है कभी ।
फिर भारत सुख सम्पन्न हो, यदि हम चाहें तो अभी ॥

२१

गो-सेवा नित करो हाथ से, लज्जा छोड़ो ।
हो उद्योग परायण आलस से मुंह मोड़ो ॥
करके विपुल प्रयत्न रोकदो गोवध सारा ।
गो-वध ही से सर्व नाश हो रहा हमारा ॥
हे हे संठे मिल मालिको, राजा बाबू नरवरो ।
हे नेताओ मिल कर सभी, गोरक्षा हीको करो ' ॥

भक्ति और ज्ञान

[ले० श्री भक्त रत्न मथुराप्रसाद जी]

भक्ति का दर्जा ज्ञान से यों भी बड़ा हुआ है कि ज्ञानी परम पुरुषार्थ मोक्ष को मानते हैं और भक्त लोग मुक्ति की कुछ भी परवाह नहीं करते:-

मनागेव प्रस्तावां हृदये भगवद्रतौ-
पुरुषार्थास्तु चत्वार स्तृणायन्ते समन्ततः॥

अर्थात् थोड़ी सी भी भगवान् में प्रीति उपजि आवै तो चारौ पुरुषार्थ तिन के की समान प्रतीत होने लगते हैं। जिन में मुख्य पुरुषार्थ मोक्ष है भक्त को तो केवल भगवान् के चरणों में प्रीति ही चाहिये जिसके आगे मुक्ति कुछ भी वस्तु नहीं नारद मुनि कहके हैं कि:-

हरि भक्ति महादेव्याः सर्वा मुक्त्यादि सिद्धयः।
मुक्तयश्चाद्भुतास्तस्या इत्येवं कावदन्नृताः॥

अर्थात् हरि भक्ति के आगे मुक्ति आदि सिद्धियाँ दासी की भांति पीछे २ चलें हैं। और भी कहा है:-

ब्रह्मानंदो भवेदेव चेत् परार्धगुणो कृतः।
नैति भक्ति सुखाम्भोधेः परमाणु तुलामपि॥

यानी भक्ति सुख के आगे ब्रह्मानंद कुछ भी हैसियत नहीं रखता।

एक बड़े भारी भय का स्थान यह है कि ज्ञानी शरीर जब प्रारब्ध कर्म के भोग में रोग ग्रस्त हो जाय तो उसकी चित्त वृत्ति विकल हो जाने से तत्व विचार से दूर हट जाती है। और "अहं ब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्म हूं यह विचार न होकर देह में आत्म बुद्धि अथवा मूर्छा (गफलत) होजाय तो अन्ते मतिः सा गतिः इस वचन के अनुसार अधोगति को प्राप्त हो जाने की संभावना है और भक्त की उस अवस्था में भी कोई भय नहीं क्योंकि भगवान् की आज्ञा है।

वदि वातादि दोषेण सद्भक्तो मांच विस्मरेत्।
तर्हि स्मरामयहं भक्तं नयामि परमां गतिम्॥

अर्थात् वात पित्त कफ आदि दोष करके मेरा भक्त मुझे भूल भी जाय तो मैं उसे चेत करा के सद्गति करदेता हूं प्रिय पाठकगण जरा ध्यान देने की जगह है कि ज्ञान और भक्ति दोनों में विशेष आदरणीय कौन है इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में तारतम्य दिखलाया है।

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वयस्त भावाद विशुद्ध बुद्धयः।आरुह्यकृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृत युष्मदंघ्रयः॥

तथा न ते माधव नाभकाः क्वचिद् भ्रश्यन्ति मार्गात् त्वयि बद्ध सौहृदस्त्वया भिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीक मूर्द्धसु प्रभो॥

अर्थात् जो ज्ञानी पुरुष मुक्त हो जाने का अभिमान रखते हैं और भक्ति विमुख होने से बुद्धि उनकी मलिन है वे बड़ी कठनाई से परम पद तक पहुंच कर भी नीचे गिर जाते हैं।

और जिनको भगवान् ने अपनाय लिया है ऐसे भक्त कभी मार्ग से भ्रष्ट नहीं होते वे तो भगवान से सुरक्षित होकर विघ्नों के सरदारों के मस्तक पर चरण रख कर निर्भय विचरते हैं।

इसी विषय में एक ज्ञानी और एक भक्त दो मित्रों पर बीते हुए चरित्र का उदाहरण सुनिये

अवन्तिका पुरी में दो मित्र एक वैश्य दूसरा राजपुत्र निवास करते थे वैश्य भगवद् भक्त का नाम चरण दास और ज्ञानी क्षत्रिय का नाम घमंडी सिंह था यह दोनों मित्र विदेश यात्रा के लिये घर से निकले और तीन चार दिनके बाद काशी पहुंचे काशी पुरी सनातन धर्मियों के मत में मोक्ष दायक समझी जाती है इसी का नाम वाराणसी जिसका अपभ्रंश बनारस है· बनारसी ठग प्रसिद्ध हैं जो प्रायः सन्यासी वेष में लोगों पर घात करते हैं और यहाँ की स्त्रियाँ भी कुटला अधिक संख्या में पाई जाती हैं जिनसे बचना कठिन कहा जाता है।

यह दोनों पथिक सांयकाल नगर में प्रविष्ट होकर हारे थके एक सराय में ठैहर गये जिसके समीप हीं एक साफ सुथरा मकान किसी गृहस्थि का देखने में आया जिसमें एक वृद्धा स्त्री बड़े प्रेम से ठाकुर सेवा करती दिखाई दी चरणदास के पास भी सेवा का एक बक्स था जो घमंडी सिंह की आँखों में खटकता था।

चरणदास ने स्नान करके संध्या आरती की तैयारी की इस पर घमंडी सिंह कहने लगा देखो मित्र विदेश में आकर यह पूजा का आडम्बर कम करना चाहिये पहले बजार की तरफ चलकर जरूरी सौदा खरीदना था तुम इसी संकट में घंटा दो घंटा लगा दोगे।

चरणदास- भाई आपको जाना जरूरी है तो हो आइये मैं सेवा किये बिना कहीं भी जाना पसंद नहीं करता:-

घमंडी- अच्छा तो मैं पास के बाजारमें हुए आता हूं (घमंडी सिंह अकेला जाकर रोता हुआ वापिस आता है)

चरण०- हैं हैं भाई क्या हुआ रोते कैस हो कहो तो सही क्या हुआ।

घमंडी- क्या कहूं भाई मुझे बाजार में पहुंचते ही एक साधु मिला बड़ा महात्मा नजर आता था मुझ से वेदान्त की बात करता हुआ साथ होलिया रास्ते में उसने आश्रम दिखला के ठैहरने को कहा मैं ठैर गया जेब में मेरे १० गिन्नी एक बटवे में थी वहां से चल कर देखा तो जेब कतरी हुई और बटवा नदारद इसी अरसे में वह साधु रफूचक्कर होगया, पूछने पर जाहिर हुआ कि वह कोई बदमाश था और वह मकान उस की बैठक थी।

चरण- मित्र यह बनारस है अभी क्या है बाकी जमापूंजी होशियारी से रखना - अब रात होगई सुबह देखा जायगा (दोनों ने आराम किया)

दूसरे दिन उस पडोसन भक्त वृद्धा स्त्री से बात चीत हुई चरणदास का और उसका भगवत् सेवा परायण होने से मेल हो गया परन्तु घमंडी सिंह ने उससे जो बात चीत की वह इस भांति-

घमंडी- माता जी। आप और मेरे मित्र चरणदास जी जितना समय पूजा सेवा में व्यर्थ नष्ट करते हैं इतनी देर यदि आप लोग आत्म चिन्तन और तत्व विचार किया करें तो कितना लाभ हो।

(अपूर्ण)

'गङ्गा' का वेदाँक।

४००००) का साहित्यिक दान !!!

५) रु० की जगह ३) रु० सालमें ही "गङ्गा" बीस हजार निर्धन व्यक्तियों को मिलेगी!

बनैली-राज्याधिपति कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुरने अपने द्वितीय राजकुमार के जन्मोपलक्ष में सुप्रसिद्ध हिन्दी मासिक पत्रिका "गंगा" को इसलिये ४००००) रु० का दान दिया है कि, इस रकम से बीस हजार असमर्थ व्यक्तियों (धन-हीन विद्यार्थियों, किसानों, मजूरों, अछूतों, पुस्तकालयों और सार्वजनिक सभाओं आदि) को "गङ्गा" ५) की जगह ३) रु० वार्षिक में ही दो वर्ष तक दी जाय। ३१ अगस्त तक जिसका ३) रु० मनी आर्डर से "गङ्गा"-कार्यालय में आ जायगा, उसको प्रथम वर्ष की "गङ्गा" दी जायगी। प्रथम वर्ष वालों को "गङ्गांक" नामका प्रसिद्ध विशेषांक भी मिलेगा। जिसका ३) रु० तीस सितम्बर तक आवेगा, उसको द्वितीय वर्ष की "गङ्गा" मिलेगी। द्वितीय वर्ष के ग्राहकों को "वेदांक" नाम का विशेषांक मिलेगा। इसे धार्मिक दान समझ कर कृपया समर्थ व्यक्ति ३) रु०का मनी आर्डर कदापि न भेजें। इसमें संसार भरके अधिकारी विद्वानों के वेद-विषयक लेख रहेंगे, वेद-सम्बन्धी प्रत्येक ज्ञातव्य बात की साङ्गोपाङ्ग समालोचना रहेगी, वैदिक साहित्य के प्रत्येक अङ्गपर विशद विचार रहेगा। नये-नये चित्र होंगे। नवाभिनव ज्ञान-तरङ्गें बहेंगी।

"गंगा," कृष्णगढ़, सुलतानगंज, भागलपुर

भजन

मन मोहन सम सुन्दर को है ॥टेक॥
मैं अपने अनुमान कहत हूं,
उनकी पट तर और न सोहै ॥१॥
चितवन चपल रूप उजियारो,
जाको मुख नित चन्द्र उजो है ॥२॥
नारायण जो एक दृष्टि में,
सुर नर नाग सभी को मोहै ॥३॥

२

सियाराम बिना बीते जात दिना ॥टेक॥
धन जोबन और सुत सम्पदा, रैन का स्वप्ना ॥१
भाई बन्धु कुटुम्ब घनेरा कोई नहिं अपना ॥ २
कहत कबीर सुनो भाई साधो झूठे मित्र घना ॥३

३

बिन देखे मन माने न मेरो ॥टेक॥
श्याम वर्ण चित लाड़लो मेरो,
रूप सुधा विध जगत् उजेरो ॥१॥
चाल मराल मनोहर बोलन,
चपल नैन मोतल मन हेरो ॥२॥
नारायण त्रिभुवन के स्वामी,
श्री वृषभानु कुंवर को चेरो ॥ ३॥

४

मिलजाना रामपियारे, नैना तरसें तेरे दर्शनको ॥टेक
बन प्रमोदमें खड़ी पुकारूं,
सुनियो रूप उजारे ॥ १ ॥
सुन्दर श्याम कमलदल लोचन,
मम नैनन के तारे ॥ २ ॥
रामसखे ज्यों जलबिन मछली,
तड़फत प्राण हमारे ॥ ३ ॥

५

सुमरन बिन गोता खाओगे ॥ टेक ॥
मुट्ठी बांधे आयो गर्भ से, हाथ पसारे जाओगे ॥१॥
जैसे मोती फरत ओसकै, बेर भये झर जाओगे ॥२॥
जैसे हाट लगावे हटुवा, सौदा बिन पछताओगे ॥३॥
कहे कबीर सुनो भाई साधो सौदा लेकर जाओगे ॥४॥

६

गुरुकी महिमा भारी साधो,
गुरुकी महिमा भारी रे ॥ टेक ॥
गुरु आधार निराधारन के,
पतितन के हितकारी रे ॥
विश्वामित्र परम हितकारी,
दयालु परोपकारी रे ॥ १ ॥
कट २ मरे रैन दिन मूरख,
चल रही तेग दुधारी रे ।
जिन पर भई कृपा सत्गुरु की,
अमर भये नर नारी रे ॥ २ ॥
जन्म मरण का शोक रोग,
अति आवागमन बीमारी रे ।
जब तक मिलेना वैद्य गुरुजी,
निष्फल औषधी सारी रे ॥ ३ ॥
होता ना निर्मल शीघ्र किसी ढब,
जन्म कमरिया कारी रे ।
गुरुकी मौज अरु हरकासाबुन,
काटे मैल तुम्हारी रे ॥ ४ ॥
पृथ्वी कागज कलम बनस्पति,
स्याही सिन्धु बारी रे ।
गुरुकी महिमा तो भी अलिख है,
ब्रह्मा विष्णु लिखारी रे ॥ ५ ॥
कथ ना सके गुरुकी महिमा,
मोहन दीन अनारी रे ।
खोजत २ पद परमानन्द,
पाई अटल अटारी रे ॥ ६ ॥

७

मन हलवैयाहो नाम विमल पकवान ॥टेक॥
नाम कढाई प्रेम घीवकर मन मैदा कर सान ।
ब्रह्म अग्नि उद्धार के इक अजब मिठाई छान ॥ १ ॥
तन बनाओ पालड़ा मन पूरा कर सेर ।
सुरति निरत की डंडी बनाओ तोलन में कुछफेर ॥२
गगन मंडल में घर है तुम्हारा त्रिकुटी लाग दुकान ।
उन मुनियों में रहन बनाओ जब कछु सौदा जान ॥३
कहें कबीर सुनो भाई साधो यागति अगम अपार ।
सत्यनाम साधु जन लादें विप लादे संसार ॥४॥

८

मनकी मनही मांहि रही ॥ टेक ॥
नाहरि भजे ना तीरथ सेवे, चोटी काल गही ॥ १ ॥
दारा मीत पूत रथ सम्पति धन जन पूर्ण मही ॥ २ ॥
फिरत २ बहुते जुग हारयो मानस देह लही ॥ ३ ॥
नानक कहत मिलन की विरियां सुमरत कहानहीं ॥